योग-साधन-माला, वर्ष २ पु० १२

* ओ३म् *

मृत्युञ्जय

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" ॥

अथ० ११।१।१६

=ब्रह्मचर्य के तप से देव मृत्यु को हटाते हैं।

—:-०-:—

लेखक और प्रकाशक—

श्रीस्वामी अभयानन्द सरस्वती,

योगमण्डल 'गुरुकुल' काशी,

(बनारस सिटी)

मुद्रक—शिवराम मालिक "दी नेशनल प्रेस"

बनारस कैण्ट।

सम्वत् १९८१ वि० [illegible]

मूल्य ।।) आने।

विषय सूची

ओ३म्

मृत्युञ्जय।

प्रार्थना

ओ३म्। अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयंद्यावा-पृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयंपुरस्तादुत्तरा-दधरादभयं नो अस्तु॥ अभयं मित्रादभयम मित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्त मभयं दिवानः सर्वा आशा ममामित्रं भवन्तु ॥२॥ अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५।६ ॥

हे भगवन्! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (नः) हमारेलिये (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे। (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयं) निर्भयता करें। (पश्चात्) पीछे से (अभयं) भय न हो। (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो (उत्तरात्, अधरात्) ऊँचे और नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥ १ ॥

हे जगत्पते! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो। (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो। (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थों से (अभयम्) भय न हो। (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थों से (अभयम्) भय न हो। (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो। (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो। (सर्वाः) सब (आशाः) दिशायें (मम, मित्रम्) मेरी मित्र (भवन्तु) हों ॥२॥

जीवन और मरण का रहस्य

पाठकवृन्द !

साधारणतया जीवन उसी दशा को कहा जाता है जबतक यह शरीर यथासाध्य अपनी सब आवश्यक क्रियाओं को करता हुआ संगठित अवस्था में वर्तमान रहता है। जब शरीर अपनी आवश्यक क्रियाओं के करने में नितान्त असमर्थ हो जाता है और इस कारण संगठित न रहकर गलने पचने लगता है तब इसकी मृत्यु की दशा कही जाती है। जिस समय शरीर के सब अंगों को सम्मिलित कर के मनुष्य के पूरे जीवन पर हम दृष्टि डालते हैं तो उसमें दो प्रधान अंग पाते हैं। एक तो अपनी सब कारीगरियों को लिये हुए यह शरीर और दूसरे विशाल शक्तियों के बीज, सम्भावनाओं, विकासोन्मुख उच्चभावनाओं को लिये हुए अद्भुत मानस है। जीवन के इन दोनों अंग में भी मानसिक अंग प्रधान दिखाई देता है। देह इस मानस के आधार के लिये केवल साधनमात्र दिखाई देता है। मानस अपनी विशाल शक्तियों के बीज को धारण किये हुए और महान् उद्देश्यों को धुधलेरूप से अपनी दृष्टि के सन्मुख र हुए विकासोन्मुख होकर ऊर्ध्व गति की ओर पुरुषार्थ कर है। अभी इसका पुरुषार्थ प्रारम्भ हुआ है। अभी इसके उ के अनुसार विकास करने का सारा कार्य शेष है। इसी सम में मरण हो जाता है। मरणोन्मुख मनुष्य के शरीर की शक्तियां शनैः शनैः या शीघ्रता से क्षीण होने लगती है, दैहिक क्रियायें निर्बल और धीमी होने लगती हैं, प्रफुल्लरूप में भी परिवर्तन आने लगता है और बस सारी चेष्टा बन्द हो जाती है और मनुष्य मरा हुआ कहा जाता है। अब वह मानस उस शरीर में होकर कोई कार्य्य न करेगा न अपने हित मित्रों से इस शरीर

द्वारा कुछ कह सुन या व्यवहार रख सकेंगी। यह व्यवहार सर्वदा के लिये बंद हुआ। इसी निराश से घर परिवार वाले एक अनभ्यस्त घटना को पाकर व्याकुल हो रोने पीटने और शोक करने लगते हैं।

उस देह की यह दशा होती है कि ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यों देह का आकार कुरूप होता जाता है। शरीर के भीतर की सभी क्रियायें श्वसन, वेदन, प्रेरणा, रुधिर संचालन और पाचन आदि बन्द हो गयी हैं। कारखाने से इञ्जिनियर चला गया, कारखाना सूना पड़ा है। फिर वह शरीर बोलने कहने और सुननेवाला नहीं है। ऐसी दशा को प्राप्त हो गया कि जिस दशा का हमें इन इन्द्रियों और बुद्धि द्वारा कुछ भी ज्ञान नहीं। ज्ञात से अज्ञात में विलीन हो गया। अब वह शरीर देह न रहकर साँप की छोड़ी हुई केंचुल के समान निर्जीव हो गया महान् और भयंकर परिवर्तन! इस जीवन की कहानी समाप्त हो गई। काल पाकर यह शव भी बिगड़ने लगता है। कोई इसे जलाकर शीघ्र पंचतत्व में मिला देता है और कोई गाड़ या जल प्रवाह करके इसे आँख से ओट करता है। साधारण दृष्टि में यही मरण है। हम लोग यद्यपि अपने विज्ञान द्वारा जानते हैं कि इस संसार का कोई पदार्थ नाश नहीं होता, छोटा परमाणु भी अभाव को प्राप्त नहीं होता, परन्तु अपनी दृष्टि के सन्मुख उस चिर अभ्यस्तरूप, उस चिर अभ्यस्त समागम, उन चिर अभ्यस्त क्रियाओं को न देखकर योंही उसका नाश मान लेते हैं इसी नाश के मान लेने से हमारे हृदयों पर बड़ा धक्का और बड़ी चोट लगती है। इससे यह घटना और भी भयंकर प्रतीत होने लगती है। परन्तु भय और शोक की लहरें जब हमारे चित्त में शान्त होने लगती हैं और मन कुछ कुछ स्थिर होने लगता है तब हम विचार करते हैं तो हमें निश्चय जान पड़ता

है कि शरीर का नाश नहीं होता। शरीर के बनानेवाले देहाणु, यदि शव जलाया नहीं गया है, तो उस केन्द्रस्थ प्रवृत्ति मानस के शासन से छूट जाते हैं। इन्हें स्वराज्य मिल जाता है। उस शासन से छूटने पर कुछ देहाणु तो पृथक् पृथक् और छिन्न भिन्न होने लगते हैं, जिस दशा को हम शव का सड़ना कहते हैं। जिस शक्ति ने इन देहाणुओं को शासन में धारण किया था वह तो हट गयी, इसलिये देहाणु अपना अपना मार्ग पकड़ने और नये संयोगों के कर लेने के लिये छुट्टी पागये। कुछ देहाणु तो कीड़े मकोड़े और अन्य जन्तुओं के शरीर में जाकर उनके अंग बन जाते हैं। कुछ खाद के रूप में पौधों की खोराक़ होकर उनका अंग बनते हैं और अन्त में जन्तुओं के शरीर में फिर चरे और खाये जाने पर पहुँचते हैं तथा कुछ पौधों ही के शरीर में रह जाते हैं। कुछ पृथ्वी में कुछ काल तक पड़े रहते हैं परन्तु परमाणु का जीवन अनन्त और अनवरत परिवर्तन का है।

इस प्रकार जब हम देखते हैं तो शरीर के बनानेवाले परमाणुओं का नाश नहीं होता। ये छिन्न भिन्न और परिवर्तित दशा में हो जाते हैं। इनका केवल रूपान्तर होता है। सृष्टि में नाश है ही नहीं। परिवर्तन ही परिवर्तन है। पदार्थ सब बने हुए रहते हैं, पररूप और दशा का परिवर्तन किया करते हैं। एक समय कुछ परमाणु परस्पर मिलकर एक संयोग बाँधते हैं, फिर दूसरे समय में उस संयोग को बिगाड़ कर दूसरा संयोग बाँध लेते हैं। ऐसाही नियम इस दृश्य जगत् का देखने में आता है।

❀ मनीषियों का मत ❀

जब अपने लिंग शरीर से आवृत जीव शनैः शनैः स्थूल शरीर से निकलने लगता है तब उस मनुष्य का सारा जीवन-

चरित्र, बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक, उसकी मानसिक दृष्टि सन्मुख प्रत्यक्ष होने लगता है। स्मृति अपनी गुप्त बातों को प्रगट कर देती है और मन के सन्मुख चित्र पर चित्र बड़ी शीघ्रता से आने लगता है और बहुत सी बातें उस प्रस्थानोन्मुख जीव को स्पष्ट हो जाती हैं। बहुत बातों का कारण प्रगट हो जाता है। अर्थात् वह अपने अब तक के पूर्ण जीवन को पूर्णतम देखता है क्योंकि वह उस समग्र को एक साथही देखता है। यह मरणोन्मुख मनुष्य को स्पष्ट स्वप्न की भाँति दिखाई देता है। परन्तु यह गहिरा चिन्ह छोड़ जाता है। जीव पीछे इन स्मृतियों को फिर फिर उभाड़ कर इनका व्यवहार करता है। योगी लोग सर्वदा से कहते आये हैं कि मरते हुए मनुष्य के हित और मित्रों को उसके पास खामोशी और शांति रखनी चाहिये कि जिससे विरोधी भावनाओं और चित्त के फेरनेवाले शब्दों के द्वारा उसका उद्वेजन न हो। जीव को चैन और शान्ति से अपना रास्ता लेने देना चाहिये। जो लोग उसके पास होवें अपनी इच्छाओं और शब्दों से उसे रोकें नहीं।

जो मनुष्य उच्च श्रेणी के आत्मिक विकाश को पहुंचा है, वह अधिक काल तक इस विश्राम की अवस्था में रहेगा, क्योंकि उसे बहुत कुछ त्यागना है, मन की यह त्यक्त वृत्तियां गुलाब सुमन की पखड़ियों की भांति एक एक करके झड़ेंगी। बाहर ही झड़ते झड़ते भीतर को चलेंगी। प्रत्येक जीव तभी जगता है जब उसकी कमाई के अनुसार झड़नेवाली सब नीचतायें झड़ जाती हैं और जब वह अपने विकाश के अनुसार उच्चतम अवस्था को पहुंच जाता है। जिन लोगों ने इस गत पार्थिव जीवन में अधिक आत्मिक विकास किया है उनको बहुत सी नीचताओं को छोड़ना होता है, और जो लोग भूजीवन के अवसरों को चूके रहते हैं और वैसेही मरते हैं जैसे जन्मे थे, तो

उन्हें बहुत कम नीचतायें त्यागनी पड़ती हैं और इसलिये ये बहुत थोड़े ही काल में जग उठेंगे। यहां पर इस बात को कह देना हम बहुत आवश्यक समझते हैं कि विश्राम की दशा में प्रवेश करने पर तथा पूर्ण विश्राम में भूमि पर मनुष्य बहुत बाधा पहुंचा सकते हैं। जिस जीव को भूमि पर के मनुष्यों को कुछ जताना होता है अथवा जो भूमिस्थ मनुष्यों के दुःखों में दुःखित होता है, विशेष करके जब भूमिस्थ मनुष्य उसके लिये विलाप या चाहना करते हैं, वह अपने ऊपर आती हुई विश्राम निद्रा को टालता है और भूमि पर जाने के लिये बड़ा उद्योग करता है। ऐसेही भूमिस्थ लोगों की पुकार उसकी सुख-निद्रा में भी बाधा पहुंचाती है और वह जग जग कर इसकी पुकारों का उत्तर दिया चाहता है। इस प्रकार उसके विकास में बाधा पड़ती है। ऐसे विलापों और ऐसी चाहनाओं से हमारे प्रिय मनुष्य को बड़ी पीड़ा और बेचैनी होती है, यदि वे अपने जीवन ही काल में विराग न उत्पन्न कर लिये हों हमें उचित है कि मृत—मनुष्यों को स्वच्छन्द विश्राम और विकाश करने का अवसर दें कि वे सोवें और विश्राम करें और अपने परिवर्त्तन की प्रतीक्षा करें। जीव की निद्रा और उसके विश्राम का यह समय बच्चे की गर्भस्थिति की दशा के समान है। बच्चा गर्भ में सोता है कि जीवन और शक्ति में जगे।

जागृति की अवस्था का वर्णन करने के पहिले हमें आवश्यक जान पड़ता है कि यह जता दें कि केवल उन्हीं मनुष्यों के जीव सुखनिद्रा में तुरन्त जाते हैं जो छेड़े न जायँ और जो स्वाभाविक मृत्यु से मरे हैं। जो दुर्घटना में पड़कर अकाल मृत्यु से मरते या वध किये जाते हैं अर्थात् जो अकस्मात् शरीर त्याग कर निकल पड़ते हैं वे अपने को जागते हुए और पूर्ण मानसिक शक्तियों सहित पाते हैं। वे प्रायः नहीं जानते हैं कि उनकी मृत्यु

हो गई है और यह नहीं समझते कि उन्हें क्या हो गया है। वे थोड़े काल तक अपने पार्थिव जीवन की सारी चेतना रखते हैं और उनके गिर्द जो घटनायें होती हैं उन्हें देखते और सुनते हैं। वे सब बातें वे अपने लिंग (सूक्ष्म) शरीर की इन्द्रियों द्वारा करते हैं। वे इस बात की कल्पना ही नहीं करते कि स्थूल शरीर को छोड़ दिये हैं, इसलिये वे बहुत घबड़ाते हैं। उनका भाग्य अत्यन्त दुःखदायी होता यदि वे और सहायक छाया पुरुषों की सहायता से निद्रा में न भेजे जाते। ये छाया पुरुष उच्चभूमिकाओं या लोकों के जीव हैं और इस जीव के पास एकत्र हो जाते हैं और बड़ी कोमलता से इसे इसकी वास्तविक दशा समझा देते हैं। इसको सलाह, धैर्य देते हैं और इसकी खबरगिरी करते हैं। अन्त में यह जीव भी थककर उसी प्रकार सो जाता है जैसा रोता हुआ बच्चा थककर सो जाता है। वे सहायक अपने कर्त्तव्य में कभी नहीं चूकते हैं। और जो कोई अकस्मात् देह त्याग करता है, चाहे वह भला हो या बुरा वह इनके द्वारा त्यक्त नहीं होता, क्योंकि ये सहायक लोग जानते हैं कि सभी ईश्वर के बच्चे और हमारे भाई बहन हैं। जब कभी भारी दुर्घटना होती है या बड़ा युद्ध होता है और तत्काल सहायता और परामर्श की आवश्यकता होती है तो आत्मिक विकाश के उच्च सोपानों की उचित चेतनायें भी अपने उच्चलोकों से उतरती और धैर्य तथा ज्ञान का लाभ पहुंचाती हैं। अपने कम भाग्यवान भाइयों की सहायता अपने अर्जित सुख का त्याग कर देते हैं। अकाल मृत्यु वाले भी शनैः शनैः जीव की निद्रा में सो जाते हैं और उनकी भी आवरण कारिणी केचुलों का उसी प्रकार झड़ना प्रारंभ होने लगता है जैसे स्वाभाविक मृत्यु वालों का होता है। जब जीव आवरणकारी खोखलों को त्याग चुकता है और उस दशा को पहुं-

चता है जिसके वह अपने को भू जीवन में बनाये रहता है, तब वह उस लोक में पहुंचता है जिसके योग्य वह होता है। ये लोक स्थान नहीं हैं, किन्तु दशायें हैं। ये लोक एक दूसरे में व्याप्त हैं। एक लोक का वासी जीव दूसरे लोक वालों का कुछ ज्ञान नहीं रखता। एक लोक का जीव दूसरे में जा भी नहीं सकता। हां, यदि उच्चलोक का जीव चाहे तो वह नीचे के लोकों का ज्ञान प्राप्त कर सकता और वहां पहुंच भी सकता है। परन्तु नीचे के लोक वाला ऊपर के लोक का न तो ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है, न वहां पहुंच ही सकता है।

यही मनुष्य का जीवन और मरण है। इन दोनों का एक मात्र उद्देश्य आध्यात्मिक विकास है। इसी विकास के उद्देश्य से ऐसे जीवन और मरण हुआ करते हैं।

योगशास्त्र यह उपदेश करता है कि मनुष्य सर्वदा रहा है और सर्वदा रहेगा। I change but I c nnt d e=मैं परिवर्तित होता हूं मैं मरता नहीं। जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह निद्रा है, जिससे अगले दिन जागना पड़ेगा। मृत्यु में चेतना का केवल क्षण भंगुर लोप होता है। जीवन-लगातार है और इसका उद्देश्य खिलना, विकसना और वृद्धि करना है। हम अब भी वैसाही अनन्त में हैं जैसे कभी हो सकते हैं। जीवही प्रधान है। यह शरीर का आभूषण या पुछल्ला नहीं है। जीव शरीर से पृथक् भी वैसाही रह सकता है जैसे शरीर में रह सकता है। हाँ, यह ठीक है कि शरीर धारणही करने से कोई कोई अनुभव और ज्ञानप्राप्त होते हैं। हमें-शरीर इसलिये मिला है कि हमें इसकी आवश्यकता है। जब हम एक निश्चित श्रेणी तक विकास करलेंगे तब हमें इस किस्म के शरीर की आवश्यकता न रहेगी जिस किस्म का अब है। जीवन के और भी अधिक स्थूल लोकों में इस शरीर से भी अधिक स्थूल शरीर को जीव

धारण कर चुका है। उच्च लोकों में शरीर भी सूक्ष्म होता जायगा। यह जीव बहुत दिनों से विकास करता इस अवस्था को पहुंचा है और आगे भी इसे बहुत विकास करना है जिसे वह चाहे मन्दगति से करे चाहे तीव्रगति से।

यह आध्यात्मिक विकास किस उद्देश्य की ओर जा रहा है? इसका अर्थ क्या है? जीवन के नीचातिनीच रूप से लेकर उच्चातिउच्च रूप तक, सब पथ पर हैं। वह पथ किस स्थान किस दशा की ओर जा रहा है? आइये! इन प्रश्नों के उत्तर देने का यत्न इस प्रकार किया जाय। कल्पना कीजिये कि करोड़ो अरबों वृत्त एक दूसरे के अन्तर्गत हैं। प्रत्येक वृत्त जीवन की एक एक कक्षा है। बाहरी वृत्त तो नीच और अत्यन्त भौतिक है। ज्यों ज्यों ये वृत्त केन्द्र के निकट पहुँचते जाते हैं त्यों त्यों उच्च और उच्चरूपों को धारण करते जाते हैं। फिर अधिक निकट पहुँचने पर मनुष्य देवता हो जाते हैं। और भी निकट, इससे भी निकट, अधिक निकट, उच्च से उच्च जीवन होता चला जाता है। अब आगे की भावनाओं का मानव-हृदय कल्पना नहीं कर सकता। परन्तु केन्द्र में क्या है? सारे आध्यात्मिक शरीर का मस्तिष्क-परमात्मा-परमेश्वर! हम लोग उसी केन्द्र की ओर जारहे हैं। वहाँ पहुँचकर जीव मुक्ति अवस्था में तद्धर्मतापत्ति द्वारा ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है।

❀ मृत्यु व्यवस्था ❀

हृदि सम्पद्यते वाक्यं प्राणे सम्पद्यते मनः।
शुचौ सम्पद्यते प्राणस्तदेवो तिष्ठते हृदः॥ ८८॥
बहिर्निःसृत्य तत्तेजोऽव्यक्तरूपेणवायुनः।
लीनं लिंग वपुर्यस्मिन्नियमाल्लयेद्द्रुतम्॥ ८८॥

वायुधूमं प्रभारूपं स्वस्वशक्त्याधिकं क्रमैः ।
कर्षन्तिपवनाज्वेन्द्रास्तत्रैवयाति तद्धनम् ॥ १८० ॥

(तत्व मीमांसा)

मृत्यु समय प्रथम वाक्य इन्द्रिय अपने भाषण व्यापार को परित्याग कर मन विषय लय होता है, और मन अपने संकल्प विकल्प को त्याग प्राण विषय तथा प्राण अपने व्यापार को त्याग तेज विषय लय होता है, इस कारण मृतक शरीर विषय प्राणादि गत होने पर भी तेज बना रहता है, निपुणवैद्य इसकी भली भाँति परीक्षा कर सकते हैं, और तेजस्थ होने से उसे मृतक नहीं मानते, फिर वह नाभिस्थ (**वामपार्श्वे स्थितो नाभेः किंचित्सूर्यस्यमंडलं तन्मध्येस्थितः सौम्य-स्तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः**) तेज हृदय द्वार से उत्क्रमण हुआ ब्रह्मांड को ताड़ना करता है, जब इसकी ताड़ना से ब्रह्मांड नहीं फटता, और न कोई मार्ग बाहिर निकसने को मिलता है, तब लय हुआ है सूक्ष्म शरीर जिसमें ऐसा वह तेज इन्द्रिय मार्ग द्वारा शरीर से बाहर निकस अव्यक्त रूप से वायु मंडल विषय मिल जाता है। वायु, धूम और प्रभारूप से यह तेज तीन प्रकार का होता है। जिन पुरुषों के निकृष्ट कर्म हैं, उनका तेज वायु के समान और पुण्यात्मा पुरुषों का तेज धूम के समान तथा मुक्ति के साधन सम्पन्न पुरुषो का तेज प्रभारूप होता है, इस कारण (**तेचान्द्रमसमेव आदित्य लोकम्**) प्रभारूप तेज के आकर्षण करनेवाला सूर्य है इसलिए प्रभारूप तेज भानु से आकर्षण हुआ तेज में तेज लय होने से फिर (न च पुनरावर्तते) लौट के नहीं आता, और धूम रूप तेज चन्द्र से आकर्षण हुआ चन्द्र

लोकमें जन्म धारण कर दिव्य भोगों को भोग अवधि समाप्त होनेपर (ततएवपुनरावर्त्तते चन्द्रलोकेप्या वृत्तिनिमित्त कद्भावात्) इस कर्म भूमिपर श्रीमानों के घर में जन्म धारण करता है और वायुरूप तेज वायु में आकर्षण हुआ इसही पृथिवी पर जन्म ले सुख दुख भोगता है (यथा सांख्ये-त्रिधात्रयाणांव्यवस्थाकर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः)।

उपनिषदों में सप्त लोक का वर्णन आया है। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, और सत्यलोक। यहाँ पर लोक शब्द से वे भिन्न २ सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अवस्था समझना चाहिए (Planes of consciousness)

जीव की चार अवस्था हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जीव जब भूलोक में कार्य करता है तब वह जाग्रत अवस्था, जब भुवर्लोक में कार्य करता है तब वह स्वप्न अवस्था, जब सुषुप्ति में जीव होता है तब स्वर्लोक और तुरीयावस्था में जनलोक, तपलोक और सत्यलोक को प्राप्त करता है। जिस प्रकार ७ लोक हैं इसीप्रकार ७ कोष हैं। प्रत्येक लोक में आत्मा भिन्न २ कोष द्वारा कार्य्य करता है। यह ७ कोष आत्मा के यान अथवा उपाधि हैं इन्हीं के द्वारा आत्मा प्रकाश और अनभूति सिद्ध करता है। यथाः—

१ जाग्रत— अन्नमयकोष— भूलोक।

२ स्वप्न— { प्राणमयकोष— भूलोक। मनोमयकोष— भुवर्लोक।

३ सुषुप्ति— विज्ञानमयकोष— { स्वर्लोक। महलोक।

४ तुरीय— { आनन्दमयकोष—जनलोक।
हिरण्यमयकोष—तपलोक।
दहर कोष— सत्यलोक।

❀ मृत्यु समय के कार्य्यक्रम का चित्र ❀

१ वाणी— मन में लय होती है।

२ मन— प्राणमें " "

३ प्राण— अग्नि " "

४ अग्नि— वायु " "

५ वायु— आकाश " "

प्राण–अपान, अग्नि–वायु, सूर्य्य–चन्द्र। इन तीनों से प्रेरित हुआ मन चक्र पाँचों (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) प्राणों के द्वारा सातचक्र का व्यवहार चलाता हुआ यह शरीर रूप विमान अन्तरिक्ष में सुखरूप गमन करता है। "अदर्शनं लोपः" लोप को अदर्शन कहना चाहिए, अदर्शन अत्यंत अभाव सूचक नहीं है।

❀ मृत्यु क्या है? ❀

"याऽशनायाहि मृत्युः" (बृ० ब्रा० २–१) जो अशनारूप है वही मृत्यु है। अशन का अर्थ—अष–अस गतिदीप्त्यादानेषु (भ्वा० उ०) से असभुवि (अ. प. से) गति दीप्ती दान और सत्ता अर्थवाचक धातुओं से अश+अन्=अशनरूप बनता है। अशनरूप ही मृत्यु कहाती है। इस मृत्यु पदवाच्य परमात्मा से अर्चनीय संसार उत्पन्न हुआ है। अशनरूप, संसार का अर्क है। इस अर्क का अर्कत्व जानता है वही सुखी होता है।

"अर्को देवो भवति यदेनमर्चयन्ति। अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति। अर्कमन्नं भवति अर्चतिभूतानि। अर्कोवृक्षो भवति संवृत कटुकिम्न।" निरू० नै० अ० ५-४॥

सब भूतों का आधार और सत्कार करनेहारा जो होता है सो अर्क है। प्राण ही सब भूतों का अर्क है मृत्यु, अर्क, प्राण संज्ञावान् और अशन धर्मवान् यही त्वष्टु का तृतीय मुख है।

सोम+सुरा+प्राण=अग्नि, सूर्य वा मन, यही तीन मुख के एक भाव की संज्ञा है।)

शिर:—श्रीयुतमाश्रीयतेतत् शिर:। मस्तकम्। शिरसी, शिरांसि। उणा० ४-१८४॥

आधार वा आश्रय वाचक की शिर:-यह संज्ञा होता है। इन तीनों त्रिप कर्म करने वाले शिर परस्पर एक दूसरों के आधार पर स्थित होते हुए कार्य करते हैं तब महान् बलवान् अवस्था में रहते हैं, परन्तु परस्पर का आधार छोड़ देते हैं तब मृत्यु अवस्था को प्राप्त होते हैं।

सोम, सुरा और प्राण इन तीन सत्तावान् शक्ति से विश्व की सब क्रिया चली है। इन तीनों क्रिया का एक भावही मन शक्ति है। इसलिये मन के इन तत्त्वों का यथावत् जानने से मन स्वरूपी एक महान् भूत महान् शक्ति आत्माके अंकुश में आजाती है तब उसको इच्छापूर्वक जहां चाहते हो उस संसार के स्थल में वा जगत्कार्य के अन्दर जो २ कार्य बनते बिगड़ते हैं उनमें से किसी कार्य में लगा सकता है। अर्थात् मन का सत्यस्वरूप जानकर उससे अभ्यासयोग (भयरहित होकर समअवस्था) करने

से आत्मा जो २ संकल्प करता है वही मन द्वारा पूर्ण कर लेता है। परंच आत्मा जब शिव संकल्प करता है तब ही मन शांत होता है। मन की शान्ति योग द्वारा ही संभव है। जिसने योग द्वारा मन को शान्त कर लिया फिर मृत्यु जो अनिश्चित जगह में पहुंचानेवाला परम मित्र है उसका स्वागत पूज्य दृष्टि से की जा सकती है। मृत्यु भयंकर नहीं किन्तु मृत्यु का भय केवल 'हौआ' की भांति भयंकर है। जो जन मृत्यु से न डरकर मृत्यु के भय से ही डरते हैं वे ही मृत्यु को जय करने में समर्थ हो सकते हैं। योगी मृत्यु को वह ऐसा ही समझता है जैसा "पुराने कपड़े उतार कर नया पहिनना होता है।" इस प्रकार की धारणा बनाने के हेतु प्रत्येक मनुष्य को आवश्यक है कि अपनी प्राथमिक आयु धार्मिक और यौगिक वायुमंडल में व्यतीत करे। यदि आप पहिले से तैयार नहीं हुए हैं तो आपकी विजय न होगी और वही कारण ८४ लक्ष में गिरने का होगा।

❁ योगियों का आनन्दीय मृत्यु ❁

योगी लोग मृत्यु समय ज्योंही वायु चरणों से ऊपर को चढ़ने लगती है सिद्ध पुरुष अपने षट्चक्रों से जहां से सब इन्द्रियों की वायु मिलती है बटोर कर ब्रह्माण्ड में चढ़ा लेते हैं, नेत्र मूंद लेते हैं हृदय में जो ज्योतिःस्वरूप परमात्मा का मुख्य नाम "ओ३म्" है उसका मानसिक जाप करते हैं। प्राणवायु उनकी परमानन्द की सीमा को पहुंचकर ब्रह्माण्ड को तोड़कर परमज्योति में मिल जाती है या ध्यानानुसार स्वर्गलोक को चली जाती है। इसमें योगियों को लेश मात्र भी कष्ट होने के बजाय परमानन्द होता है और अन्त में ईश्वर में लीन होकर मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं। वेद कहता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पर-

स्तात्। तमेव विदित्वादिमृत्युमेतिनान्यः पन्था-विद्यतेऽयनाय ॥ यजु० ३१।१८

मैं प्रकृति के स्वामी प्रकाश स्वरूप तथा सब से बड़े सर्वत्र-परिपूर्ण परमात्मा को भले प्रकार जानता हूं, उसके जानने से ही पुरुष संसार बन्धन से छूट कर उसको प्राप्त=मुक्त होता है, इसके बिना उसकी प्राप्ति=मुक्ति का और कोई उपाय नहीं है। अर्थात् उस परमात्मा को जानकर ही मृत्यु को जीत सकते हैं, दूसरा और कोई मार्ग नहीं है।

"मृत्यु के पाश तोड़ दो।"

जीवितांज्योतिरभ्येह्यर्वाङात्वाहरामि शत शारदाय। अवमुञ्चन्मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुःप्रतरंतेदधामि अथर्व० ८।२।२

वेद भगवान् कहते हैं "जीवतों की ज्योति के पास आ जाओ, आओ तुमको सौ वर्ष की पूर्ण आयु तक पहुंचाता हूं, मृत्यु के पाशों को तथा सब अप्रसस्त विघ्नों को दूर करके प्रशस्त दीर्घ आयु तुमको देता हूं।"

गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है :—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंतेकलेवरम्।
तंतमेवैतिकौन्तेय सदातद्भाव भावितः ॥ अ० ८।६

"हे कौन्तेय! सदा जन्म २ उसी में रंगे रहने से मनुष्य जिस भाव का स्मरण करता हुआ अंत में शरीर को त्यागता है वह उसी भाव में जा मिलता है।"

तात्पर्य—यह है कि यदि देह त्यागने के समय अंत में उच्चभाव रहे, तो उच्च अवस्था में द्वितीय जन्म होता है और यदि

हीन भाव मन में रहे तो हीन परिस्थिति में जन्म होता है। इस प्रकार अगले जन्म का बीज हम इसी जन्म के अंतिम समय में बोते हैं। मरने के समय अपने शुद्ध, उच्च और पवित्र होने के लिये जैसा शुद्ध, उच्च और पवित्र आचरण होना आवश्यक है वैसाही आचरण करने की तैयारियां हम सबों को करनी चाहिये; जो विचार मन में दिन भर रहते हैं वही स्वप्न में आते हैं; इसी नियम के अनुसार जो विचार अपनी आयु में प्रधान रूपसे मनमें रहेंगे वे ही विचार अन्तिम समय में व्यक्त हो सकते हैं। इसीलिये वेदने कहा है कि—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवाभद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितं यदायुः॥ ऋ० १।८९।८

"(१) कानों से कल्याणकारक उपदेश श्रवण करें, (२) आंखों से कल्याणकारक दृश्य देखें, (३) दृढ़ अंगों से युक्त हमारे शरीरों से हमारी आयु समाप्त होने तक उत्तम विचार के साथ देवों का हित करते रहें।"

"हमारा शरीर सत्कर्म में अर्पण हो, हमारी इन्द्रियां प्रशस्त पुरुषार्थ में तत्पर हों, हमारा मन शुभ विचारों में स्थिर रहे; तात्पर्य कि हमारे पास जो कुछ हो उसका समर्पण प्रशस्ततम पुरुषार्थ में होता रहे। इस प्रकार होने से हमारा स्वभाव ही परिशुद्ध होगा और किसी भी आयु में हमारा मृत्यु हुआ तोभी अंत समय में हमारे विचार शुद्ध ही रहेंगे। और अंतिम समय के विचार शुद्ध रहने से अगले जन्म की अवस्था, अधिक उच्च होगी। अर्थात् हमारा भविष्य हमारे ही हाथों में है।" जैसा हम बोते हैं वैसा हम पाते हैं। यदि इस शरीर रूपी क्षेत्र पर धान्य बोनेवाले किसान हमी ही हैं तो उत्तम विचारों को बोकर यहां ही सुविचार पूर्ण श्रेष्ठ उद्यान बनाना हमारा आवश्यक कर्तव्य है।

❁ मृत्यु का भय ❁

प्राणीमात्र को मृत्यु का भय है। ज्ञानी तथा अज्ञानी, छोटा अथवा बड़ा, श्रीमान् किंवा दरिद्री, मनुष्य और मनुष्येतर सबही मृत्यु से भयभीत होते हैं। छोटे से छोटा कृमी मृत्यु का संभव प्राप्त होने पर वहां से दूर भाग जाता है, और समझता है कि, मेरे इस पुरुषार्थ से मृत्यु दूर हुआ है, और अब इस मृत्यु से मरने का भय नहीं है। छोटे से कृमिकीट का अपने पुरुषार्थ पर यह विश्वास सचमुच आश्चर्य करने योग्य है !!! यदि इतना मनुष्य के अंतःकरण में अपने पुरुषार्थ के विषय में हो जायगा, तो निःसन्देह बेड़ापार हो जायगा !

भाव—पहिले कई वार इसने स्वयं मृत्यु का अनुभव किया है और देखा है, कि मृत्यु से क्या आपत्ति होती है। मृत्यु के अनेक अनुभव का गुप्त ज्ञान उसकी सूक्ष्म बुद्धि में छिपा हुआ रहता है; और यही उसको प्रेरणा करता है, कि तुम मृत्यु से बचने का यत्न करो। अर्थात् पुनर्जन्म सत्य है, इसलिये हर एक प्राणी मृत्यु से भयभीत होता है, यदि पूर्व मृत्यु का अनुभव न होता, तो इस देह में आने के पश्चात् मृत्यु की कल्पना भी किसी प्राणी को न होती, और जिसकी कल्पना नहीं होती, उसके विषय में भय होना सर्वथा असंभव है। मृत्यु भयङ्कर नहीं किन्तु मृत्यु के सम्बन्ध में हम लोगों का जो संस्कार है वही भयङ्कर है।

❁ पुरुषार्थ पर विश्वास ❁

प्राणीमात्र मृत्यु से भागने का यत्न करते हैं। इस भागने की क्रिया में भी मृत्यु को दूर करने का ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ से मृत्यु को दूर किया जा सकता है, यह दृढ़ विश्वास इसमें निःसंदेह है। यह विश्वास सब प्राणियों में कैसे उत्पन्न हुआ ?

क्या कभी किसी ने पुरुषार्थ से मृत्यु को दूर किया था? निःसंदेह मानना पड़ेगा, कि प्रत्येक जीवात्मा को अनुभव है, कि पुरुषार्थ से मृत्यु को दूर हटाया जासकता है। किसी न किसी समय हरएक जीवात्मा ने अवश्यही मृत्यु को जीतही लिया होगा। योगमार्ग वैदिक प्राण विद्या का अवलंबन से इस आर्य देश के ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी और ज्ञानी मृत्यु को जीतकर अमर हो गये थे; इसलिये पूर्ण विश्वास है कि जो इस समय में भी इस मार्ग का अवलंबन करेंगे, उनको उतनी सिद्धि अवश्य प्राप्त हो सकती है।

यहां कोई लोग पूछेंगे कि वे इस समय कहां है? इसका उत्तर अमरत्व के स्वरूप का ज्ञान होने पश्चात् ही दिया जा सकता है।

❀ पुरुषार्थ के लिये उत्साहमय प्रेरणा ❀

भगवान् ऐतरेय महीदास महामुनि की उत्साहमय वाणी से पुरुषार्थ के लिये प्रेरणा का उपदेश ऐतरेय ब्राह्मण के सप्तम पंचिका में हुआ है इसलिये हर एक मनुष्य को यह उपदेश स्मरण रखना योग्य है। किसी एक प्रसंग में राजा हरीश्चन्द्र के युवराज रोहित को भगवान् इन्द्र का उपदेश निम्न प्रकार हुआ है।

नानाश्रांतायश्रीरस्तीतिरोहितशुश्रुम। पापोनृषद्वरोजनः। इन्द्रइच्चरतःसखा। चरैवेति चरैवेति॥१॥

"हे रोहित राजपुत्र! (अ-श्रांताय) जो परिश्रम करके नहीं थक जाता उस सुस्त मनुष्य के लिये (श्रीः) धन, संपत्ति, ऐश्वर्य, प्रभुत्व आदि (न अस्ति) नहीं प्राप्त होता है। (इति शुश्रुम) ऐसा हम सुनते आये हैं। (नृ—षद्वरो जनः) जो मनुष्यों में सुस्त मनुष्य होता है वही (पापः) पापी होता है।

(इत्) निश्चय से (इन्द्रः) प्रभु (चरतः सखा) पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाले उत्साही मनुष्य का मित्र है। इसलिये (चरएव) पुरुषार्थ करो, निश्चय से परम पुरुषार्थ करो।

पुष्पिण्यौचरतोजंघेभूष्णुरात्माफलग्रहिः। शेरेऽस्यसर्वेपाप्मानःश्रमेणप्रपथेहताः॥ चरैवेतिचरैवेति ॥२॥

"जो (चरतः) चलता रहता है उसी की (जंघे) जांघें (पुष्पिण्यौ) फूल कर पुष्ट होती हैं। पुरुषार्थी मनुष्य का आत्माही (भूष्णूः) अभ्युदय प्राप्त करनेवाला और (फलग्रहिः) फल मिलने तक प्रयत्न करनेवाला होता है। इसके सब पाप मार्ग के बीच में ही (श्रमेण हताः) परिश्रम के करण 'जो धर्म की धारायें बहती हैं उन धाराओ से' नष्ट हो जाते हैं। इसलिये पुरुषार्थ करो, अवश्य निश्चय पूर्वक पुरुषार्थ करो।

आस्तेभगआसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठतितिष्ठतः।शेते निपद्यमानस्यचरातिचरतोभगः॥चरैवेतिचरैवेति॥३

"(आसीनस्य) जो बैठा रहता है उसका (भगः) ऐश्वर्य (आस्ते) बैठा रहता है। (तिष्ठतः) जो खड़ा रहता है उसका ऐश्वर्य ऊपर खड़ा रहता है। (निपद्यमानस्य) जो सोता रहता है उसका ऐश्वर्य भी (शेते) सो जाता है। और (चरतःभगः) पुरुषार्थ करनेवाले का ऐश्वर्य (चरति) उसके साथ चलता हुआ आता है। इसलिये पुरुषार्थ करो, निश्चय से अवश्य पुरुषार्थ करो।"

कलिः शयानोभवतिसंजिहानस्तुद्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेताभवतिकृतंसंपद्यतेचरन्॥ चरैवेतिचरैवेति॥४॥

"(शयानः) सोनाही कलयुग (भवति) होता है। (संजिहानः) आलस्य छोड़ देना ही द्वापरयुग है। (उत्तिष्ठन्) उठना त्रेतायुग होता है और (चरन्) पुरुषार्थ करना ही कृतयुग (संपद्यते) वन जाता है। इसलिये पुरुषार्थ करो निश्चय से पुरुषार्थ करो।"

चरन्वैमधुविंदतिचरन्स्वादुमुदुंबरम् । सूर्यस्य पश्यश्रेमाणंयोनतंद्रयतेचरन् ॥ चरैवेतिचरैवेति॥५॥

(ऐतरेय ब्रा० ७।१५।१--५)

"मधुमक्षिका (चरन्) निश्चय से पुरुषार्थ करने के कारण ही (मधुविंदति) मधु--शहद--प्राप्त करती है। पक्षि (चरन्) भ्रमण करके ही (स्वादु--उदुंबरं) मीठे फल को प्राप्त करते हैं। (पश्य) देखो (सुर्यस्य श्रेमाणं) सुर्य की शोभा इसलिये है कि (यः) वह (चरन्) भ्रमण करता हुआ भी [चरन्=सूर्य की गति यहां काव्यदृष्टि से समझनी चाहिये] (नतंद्रयते) नहीं थकता। इसलिये पुरुषार्थ करो, निश्चय से पुरुषार्थ करो।"

इस प्रकार पुरुषार्थ की महिमा ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन की है। व्यक्ति के उन्नति के लिये पुरुषार्थ, समाज की भलाई के लिये पुरुषार्थ, राष्ट्र के हित के लिये पुरुषार्थ, सब जनता के अभ्युदय के लिये पुरुषार्थ कीजिये। उठिये अब बहुत देर हो गई है।

❀ पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाले कोही देवता सहायता करते हैं ❀

न ऋते श्रांतस्य सख्याय देवाः ॥ ऋ० ४।३३।११= "परिश्रम करने के बिना देव मित्रता नहीं करते"। (१) अज्ञान;

(२) थकावट, निरुत्साह, (३) आलस्य और (४) वड़वड़ करने के स्वभाव येही चार दुर्गुण अवनति लाते हैं। १ ज्ञान, २ उत्साह, ३ पुरुषार्थ प्रयत्न, ४ शान्ति उन्नति, करते हैं।

❀ अपने प्रभाव का गौरव ❀

कोई लोग अपने आप को तुच्छ समझते हैं, 'मैं गिरा हुआ हूं, मैं पतित हूं' आदि वाक्य वोलने का कइयों को वड़ा अभ्यास होता है। केवल अभ्यासकी ही बात नहीं, प्रत्युत ऐसे वोलते रहना वड़ी नम्रता का और सौजन्य का चिन्ह समझा जाता है। परन्तु—

"नात्मानमवमन्येत" ।

'अपना अपमान करना उचित नहीं' ऐसा महाभारत में कहा है। जो अपने आप के लिये तुच्छ शब्दों का प्रयोग करेगा वह शीघ्र उठ नहीं सकता। वेद में हजारों प्रार्थनाएं हैं, परन्तु किसी स्थान पर 'हे परमेश्वर मैं पतित हूं, मुझे तुम उठाओ, मैं हीन हूं मुझे योग्य बनाओ' इस प्रकार की पतित प्रार्थना नहीं।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
वलमसि वलं मयि धेहि
ओजोऽस्योजो मयि धेहि
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ यजु० १९।९

'हे परमात्मन्! तू तेजस्वी है, मुझ में तेज स्थापन कर, तू वीर्यवान है, मुझ में वीर्य स्थापन कर, तू वलवान है, मुझ में

बल स्थापन कर, तू समर्थ है मुझमें सामर्थ्य स्थापन कर, तू उत्साहमय है मुझमें उत्साह स्थापन कर; तू सहनशक्ति से युक्त है मुझमें श्रम सहन करने की शक्ति स्थापन कर, यह वैदिक प्रार्थना है । वेद स्पष्ट कहता है कि—

स्वंमहिमानमायजताम् ॥ यजु० २१।४७ ॥

'अपने प्रभाव का गौरव करो' ।

❀ विजय प्राप्त करने की कला ❀

अजीताः स्याम शरदः शतं ॥ तै० आ० ४।४२।५

अदीनाः स्याम शरदः शतं ॥ यजु० अ० ३६ । २४

हम सब सौ वर्ष पर्यंत पराजित न होते हुए जीवित रहें; तथा हम सब सौ वर्ष पर्यंत अदीन अर्थात् उत्साही जीवन में युक्त रहें ।" विजय किस प्रकार मिलता है, इस प्रश्न के उत्तर में वेद कहता है,—

अप्रतीतो जयतिसंधनानिप्रतिजन्यान्युतया सजन्या । अवस्यवे योवरिवः कृणोति ब्रह्मणेराजा तमवन्तिदेवाः ॥ ऋ० ४।५०।६

जो (अ-प्रति-इतः) पीछे नहीं हटता वह पुरुषार्थी मनुष्य ही (जयति) विजय प्राप्त कर सकता है । वही (प्रतिजन्यानि) व्यक्ति विषयक तथा सजन्या समूह अथवा समाज विषयक (धनानि) धनों को (सजयति) विजय से प्राप्त करता है । (यः) जो राजा (अवस्यवे) अपना रक्षण करनेवाला (ब्रह्मणे) ज्ञानी को ही (वरिवः) सहायता (कृणति) करता है, (तंदेवाःअवन्ति) उसी को देव रक्षण करते हैं ।

इस मंत्र में विजय की कुञ्जी रखी है। जो पीछे नहीं हटता वही विजय प्राप्त करता है। यह मंत्र का पहिला विधान है।—

प्र-इत	**प्रति-इत**
प्र-गति	**प्रति-गति**
Pro-gress	Back-going
आगे बढ़ना	**पीछे-हटना**

❁ कर्मतत्त्व ❁

'आत्मा' शरीर धारण करके कर्म करता है। **'आत्मा'** का स्वभाव इसी शब्द से ज्ञात हो सकता है। **'अत्-सातत्य गमने'** इस धातु से यह शब्द बनता है। सतत गमने, सतत कर्म, सतत पुरुषार्थ, करने का धर्म **'आत्मा'** शब्द बता रहा है। अर्थात् आत्मा सततकर्म करनेवाला है और शरीर उसके पुरुषार्थ का साधन है और बंधनों का निवारण करके पूर्णस्वातंत्र्य को प्राप्ति करना उसके पुरुषार्थों का साध्य है। जीवात्मा का दूसरा नाम **'क्रतु'** है। क्रतु का अर्थ 'कर्म' है।

'इस जगत् में पुरुषार्थ करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा धारण करनी चाहिए।' (यजु० ४०।२) यह वेद की आज्ञा जगत् में प्रसिद्ध है।

कर्म कुरु ॥ शत० ११।५।४।५='कर्मकरो।' **कर्म कृण्वंतु मानुषाः** अथर्व ६।२३।२८ "मनुष्य कर्म करें।" "योगस्थः कुरु कर्माणि" गीता २।४८=योग में स्थिर होकर कर्म कर।

❀ याज्ञवल्क्य और आर्तभाग का सम्वाद ❀

(विषयग्रह, अतिग्रह, मृत्यु, मृत्यु के पीछे की अवस्था)

बृहदा० उ० अध्या० २ ब्राह्मण २ के प्रकरण में वर्णन आया है कि एक समय (जरुत्कारु गोत्रवाले) आर्तभाग (ऋतभाग के पुत्र) ने महर्षि याज्ञवल्क्य से कहा—'हे याज्ञवल्क्य कितने ग्रह हैं और कितने अतिग्रह हैं (ग्रह का अर्थ यहां पकड़नेवाले अर्थात् वशमें करनेवाले इन्द्रियों से है क्योंकि इन्द्रिय मनुष्य को बांधते हैं, इसलिये इन्द्रिय ग्रह हैं और इन्द्रियों की यह शक्ति विषयों के अधीन है, विना विषयों के इन्द्रिय भी बांधने में असमर्थ है, इसलिये विषय अतिग्रह है)।

(याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया) आठ ग्रह हैं और आठ अतिग्रह हैं, (फिर पूछा) जो वे आठ ग्रह और आठ अतिग्रह हैं, वे कौन से हैं? ॥ १ ॥ उत्तर निम्नप्रकार देखिये—

(१) **'प्राण'**—(श्वांस निकलना) एक ग्रह है और वह अपान (अंदर श्वांस खींचना अर्थात् गंध ग्रहण करना) रूपी अतिग्रह से पकड़ा हुआ है क्योंकि अपान से गन्धों को सूंघता है ॥ २ ॥

(२) **'वाणी'**—एक ग्रह है, और वह (ग्रह) नामरूपी अतिग्रह से पकड़ा हुआ है। क्योंकि वाणी से नामों को उच्चारण करता है ॥ ३ ॥

(३) **'जिह्वा'**—एक ग्रह है, और वह रसरूपी अतिग्रह से पकड़ा हुआ है, क्योंकि जिह्वा से ही रसों को जानता है ॥ ४ ॥

(४) 'आंख'—ग्रह है, वह रूप जो अतिग्रह है उससे पकड़ा हुआ है, क्योंकि आंख से रूपों को देखता है ॥ ५ ॥

(५) 'कान'—एक ग्रह है, वह शब्द जो अतिग्रह है उससे पकड़ा हुआ है, क्योंकि कान से शब्दों को सुनता है ॥६॥

(६) 'मन'—एक ग्रह है, और वह कामना जो अतिग्रह है, उससे पकड़ा हुआ है, क्योंकि मन से कामनाओं को चाहता है ॥ ७ ॥

(७) 'दोनों हाथ'—एक ग्रह है, और वह (ग्रह) कर्म जो अतिग्रह है उससे पकड़ा हुआ है, क्योंकि हाथों से कर्म करता है ॥ ८ ॥

(८) 'त्वचा'—एक ग्रह है, और वह जो अतिग्रह है उससे पकड़ा हुआ है, क्योंकि त्वचा से स्पर्शों को जानता है। ये आठ ग्रह हैं और आठ अतिग्रह हैं ॥ ९ ॥

❁ मृत्यु और मृत्यु के पीछे की अवस्था ❁

उसने कहा—'हे याज्ञवल्क्य'! जो यह हरएक वस्तु मृत्यु का अन्न (खुराक) है, फिर वह कौन देवता है, जिसका मृत्यु अन्न है।

(याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया) 'अग्निमृत्यु है, और वह जलों का अन्न है'। वह फिर मृत्यु को जीत लेता है ॥ १० ॥

'अभिप्राय'—प्रश्न का अभिप्राय यह है कि बन्धन जो मृत्यु है, उससे हम तब छूट सकते हैं, यदि कोई मृत्यु की मृत्यु हो। उत्तर का अभिप्राय यह है कि 'अग्नि दूसरी वस्तुओं का मृत्यु है, तो भी पानी उसको जीत लेता है, इसी से जानना

चाहिये कि मृत्यु को भी जीत सकते हैं'। जो इस रहस्य को जानता है, वह मृत्यु को जीत लेता है।

उसने कहा—'हे याज्ञवल्क्य! जब यह पुरुष मरता है, तो इससे प्राण निकल जाते हैं वा नहीं? याज्ञवल्क्य ने कहा 'नहीं' इस में ही वे मिल जाते हैं, वह फूल जाता है (बाहर के) वायु से भर जाता है और इसतरह वह वायु से भरा हुआ मरा हुआ सोता है' ॥ ११ ॥

द्रष्टव्य:—प्राण = वासनाएं वह पुरुष जो मृत्यु को जीत चुका है, उसकी वासनाएं (संस्कार) उसके साथ जाकर उस के जन्मान्तर का हेतु नहीं बनती, किन्तु वहीं लीन हो जाती हैं। (शंकराचार्य)

उसने कहा—'हे याज्ञवल्क्य! जब यह पुरुष मरता है, तो क्या वस्तु इसको नहीं छोड़ती? (याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया) **'नाम'**। नाम अन्तरहित है और विश्वदेव अन्त-रहित हैं। वह उससे (अनन्त के जानने से) अनन्त लोक को ही जीतता है ॥ १२ ॥

उसने कहा—'हे याज्ञवल्क्य! जब इस मर चुके हुए पुरुष (यहां उस पुरुष से अभिप्राय है, जिसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ किन्तु कर्म परायण ही है। (शंकराचार्य) उसकी वाणी आग में जा मिलती है, प्राण वायु में, आंख सूर्य में, मन चन्द्र में, श्रोत्र दिशाओं में, शरीर पृथिवी में, आत्मा (हृदयाकाश शंक-राचार्य) आकाश में, (शरीर के) रोम औषधियों में, (शिर के) बाल वनस्पतियों में, और जलों में लहू और वीर्य रखा जाता है, उस समय यह पुरुष कहां होता है'? (याज्ञवल्क्य ने कहा) 'प्यारे आर्तभाग' हाथ लाओ, इस बात को अकेले हमही दोनों जानेंगे, हम इसको लोगों में नहीं (विचारेंगे)। दोनों ने

(वहां से) निकल कर विचार किया। उन्हों ने जो कुछ कहा, वह कर्म ही कहा। और जिसकी प्रशंसा की, वह कर्म ही की प्रशंशा की। निःसन्देह पुण्य कर्म से पुण्यात्मा बनता है, और पाप कर्म से पापी बनता है। तब जारत्कार व आर्तभाग चुप हो गया ॥ १३ ॥

'अभिप्राय'—प्रश्न का अभिप्राय यह है कि जब मनुष्य की सारी शक्तियें अपने २ कारण में मिल जाती हैं तो फिर यह पुरुष किसके सहारे उनको फिर ग्रहण करता है, उत्तर यह है, कि यह सारी महिमा कर्म की है, कर्म के आश्रय वह फिर इन शक्तियों को ग्रहण कर संसार में आता है और वह पुण्यों से पुण्यात्मा और पापों से पापी बनता है। इस विषय में वेद क्या कहता है निम्न मंत्रों को देखिये—

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीये आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुःषष्ठेमरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रानवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥ यजु० ३९ मं० ६ ॥

अर्थः—पहले दिन सूर्य्य, दूसरे दिन अग्नि, तीसरे दिन वायु, चौथे दिन (आदित्य) महीना, पांचवे दिन चन्द्रमा, छठे दिन वसन्तादि ऋतु, सातवें दिन मनुष्यादि प्राणि, आठवें दिन बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु, नवमे दिन प्राण, दसवें दिन उदान, ग्यारहवें दिन बिजली और बारहवें दिन सब दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं। अर्थात् मृत्यु (शरीर वियोग) पश्चात् जीव को ११ स्थानों से ११ दिन परीक्षा होजाने उपरांत बारहवें दिन सब दिव्य गुण मिलते हैं।

उग्रश्च भीमश्चध्वान्तश्चधुनिश्च। सासह्वां-

श्वाभियुग्वाच विक्षिपः स्वाहा ॥ २ ॥ अग्निᳬ हृदयेनाशनिᳬ हृदयाग्रेणपशुपतीं कृत्स्न हृदये-नभवंयक्ना। शर्वमतस्नाभ्यामीशानमन्युनामहा-देवमन्तः पर्शव्येनोग्रंदेवंवसिष्ठु नावसिष्ठहनुः शिङ्गीनिकोश्याभ्याम् ॥ ३ ॥ यजु० ३९ । ७ । ८ ॥

अर्थः—मरा हुआ अर्थात् शरीर त्याग किया हुआ जीव स्वकर्मानुसार तीव्र, शान्त, स्वभाव और भयकारक, व निर्भय तथा अन्धकार व प्रकाश को प्राप्त कांपता, निष्कम्प, सहन-शील, न सहनेवाला, नियमधारी और सबसे पृथक् तथा विक्षेप के स्थान को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ तथा हृदय से अग्नि को तथा हृदय के अग्रभाग से विद्युत् को संपूर्ण हृदय के अवयवों से ईश्वर को यकृत से होने वाले स्थान को हृदय के अन्यान्य अवयवों से तथा क्रोध से ईशान को और पसुरियों व आंत विशेषों से राजा जन्म को उदरस्थ मांसपिंडों से प्राप्त होने के योग्य स्थान (वस्तु) को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

उग्रंलोहितेनमित्रᳬ सौव्रत्येनरुद्रंदौर्व्रत्येनेन्द्रं-प्रक्रीडेन मरुतो बलेनसाध्यान्प्रमुदा भवस्य क-ण्ठ्यᳬ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यंमहादेवस्ययकृच्छर्वस्य-वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ यजु० अ० ३९ । मं० ९ ॥

अर्थः—गर्भ में स्थित जीव शुद्ध रुधिर से तीव्र गुण को श्रेष्ठ कर्म से प्रिय, दुष्कर्म से रुद्रस्थान, उत्तम क्रीडा (कार्य) से ऐश्वर्य, बल से मनुष्य, उत्तम आनन्ददायक कर्म से साधने योग्य पदार्थ को तथा रुलानेवाले जन को व भीतर के पसुरी

में हुए विद्वान् व पशुपति पुरुष के हृदय की नाड़ी को प्राप्त होते हैं॥ उपासक मृत्यु पाश्चात् किस मार्ग से कहां जाता है और क्या फल भोगता है इस प्रकरण को उपनिषद् क्या कहता है देखिये—

❁ मृत्युपश्चात् उपासक की गति ❁

(बृहदारण्यक उपनिषद् अध्या० ५ ब्राह्मण १०) जब पुरुष इस लोक से चल देता है, तो वह वायु में पहुंचता है। तब वह उसके लिये छेद्वाला हो जाता है (जगह देता है) जितना कि रथ के पहिये का छेद होता है, उससे वह ऊपर चढ़ता है। वह सूर्य में पहुंचता है। तब सूर्य उसके लिये जगह देता है, जितना कि लम्बर (एक प्रकार का बाजा होता है) का छेद होता है, उससे वह ऊपर चढ़ता है। वह चन्द्र में आता है। उसके लिये वह चन्द्र वहां जगह देता है जितना कि दुन्दभि का छेद होता है, उससे वह उपर चढ़ता है, वह उस लोक (प्रजापति लोक) में पहुंचता है जहां न शोक है न हिम है (शोक नहीं अर्थात् कोई मानस दुःख नहीं और वर्फ नहीं अर्थात् शारीरिक दुःख नहीं। (शंकराचार्य)। वहां वह अनन्त वर्ष रहता है।

❁ उपासकों के कष्ट सहन करने का परं लाभ ❁

बृहदा० उ० अध्या० ५ ब्रा० ११ में लिखा है कि—यह परम (सबसे बढ़कर) तप है, जो रोगी होकर तपता है (दुःख भोगता है) जो यह जानता है परम लोक को जीतता है (अभिप्राय यह है कि उपासक बीमारी को तप समझे,, न निन्दे, न निराश हो। और उसके दुःख को ऐसा ही ध्यान करे, जैसा कि तप करने में दुःख होता है। जो ऐसा ध्यान करता है, वह इस दुःख से वही फल लाभ करता है, जो उसको बड़ा

भारी तप करने में दुःख उठाने का होता है) यह परम तप है, जो मरे हुए को जंगल की ओर ले जाते हैं। (यह तप उस तप के बराबर है, जो ग्राम को छोड़कर जंगल में रहना है) जो यह जानता है, वह परमलोक को जीतता है। यह परम तप है, जो मरे हुए को आग पर रखते हैं। (यह उस तप के बराबर है, जो आग में प्रविष्ट होना है) जो यह जानता है, वह परम लोक को जीतता है।

❀ उपासकों के लिए शुक्लगति (ब्रह्मलोक प्राप्ति) के मार्ग का वर्णन ❀

(बृहदा० उ० अध्या० ६ ब्रा० २)

शतपथ ब्राह्मण में यह वर्णन है कि अग्निहोत्र के विषय में जनक ने याज्ञवल्क्य के प्रति ६ प्रश्न किये कि तुम इन (सायं-प्रातः की) दोनों आहुतियों का यहां से ऊपर उठना, गमन-करना, ठहरना, तृप्तकरना, फिर लौटना और इस लोक में आकर फिर उठना, जानते हो। वहां इन प्रश्नों के उत्तर में आहुतियों का अन्तरिक्ष और द्यौ में जाना और वहां फल देना आदि लिखा है। कर्म का फल कर्ता के लिये होता है, इसलिये अभिप्राय यह है कि सायं प्रातः के होम से अन्तःकरण में वह धर्म उत्पन्न होता है, जो मरने के पीछे साथ जाता है और फल देता है, इन दोनों आहुतियों के ऊपर उठने अन्तरिक्ष में जाने और फिर द्यौ लोक में जाने आदि का यह अभिप्राय है कि वे इस सूक्ष्म रूप में सूक्ष्म शरीर के साथ अन्तरिक्ष में से होती हुई द्यौ लोक में जाती हैं। जिस लिये ये अग्निहोत्र की आहुतियें हैं, इसलिये इनका कार्य प्रगट करने के लिये भी सब जगह अग्नि-होत्र की ही कल्पना की गई है। जैसे जब वे अन्तरिक्ष में जाती हैं, तो अन्तरिक्ष को आहवनीय अग्नि बना लेती हैं और वायु

की समिधा इत्यादि। और फिर जब द्यौ में पहुंचती हैं, तो द्यौ की आहवनीय अग्नि और सूर्य्य की समिधा बनाती हैं। इत्यादि रूप में वहां वर्णन है। अब यहां वह कर्ता द्यौ लोक से जिस प्रकार लौटता है और जो २ रूप बनता आता है, उसका वर्णन करते हुए भी अग्निहोत्र की ही कल्पना की गई है। जैसा कि बृ० उ० अ० ६ ब्रा० २ श्लो० १० 'असौवै लोकोऽग्नि गौतम तस्मादित्य एव समिद्' इत्यादि अर्थात् वह लोक (द्यौ) हे गौतम! अग्नि है; सूर्य उसकी समिधा है, किरणें उसकी धूम हैं, दिन लाट है, दिशायें अंगारे हैं, मध्य की दिशायें (कोणें) चिंगाड़ियां हैं। इस अग्नि में देवश्रद्धा की आहुति देते हैं। उस आहुति से राजा सोम (चन्द्र) उत्पन्न होता है। मेघ हे गौतम! अग्नि है, वर्ष ही उसकी समिधा है, अभ्र धूम है, बिजली लाट है, वज्र अङ्गारे हैं, (बिजली की) कड़कें चिंगाड़ियां हैं। इस अग्नि में देवता सोमराजा का होम करते हैं, उस आहुतियें अग्नि में की हैं, उनका सूक्ष्म रूप जो कर्ता के साथ द्यौ लोक में है उसी को श्रद्धा कहा है। उस श्रद्धा का वहां फिर होम होकर अब वह चन्द्र लोक में उतर कर नया रूप धारण करता है, उसी का नाम सोमराजा है॥ "यह लोक हे गौतम! अग्नि है पृथिवी ही उसकी समिधा है, अग्नि धूम है, रात्रि लाट है, चन्द्रमा अङ्गारे हैं, नक्षत्र चिंगारियां हैं। इस अग्नि में देवता वृष्टि को होमते हैं, उस आहुति से अन्न उत्पन्न होता है (वृष्टि अन्न के रूप में बदलती है)॥ ११॥ पुरुष हे गौतम! अग्नि है, खुला हुआ मुँह ही उसकी समिधा है, श्वांस धूम है, वाणी लाट है, आँख अंगार हैं, कान चिंगाड़ियां हैं। इस अग्नि में देवता अन्न का होम करते हैं, उस आहुति से बीज उत्पन्न होता है॥१२॥ स्त्री हे गौतम! अग्नि है।......इस अग्नि में देवता बीज को होमते हैं; उस आहुति से पुरुष उत्पन्न होता है।

(चौथा प्रश्न था कि कितनी आहुति में जल पुरुष की वाणीवाले होते हैं, उसका यह निर्णय हुआ कि पांचवी आहुति में वे पुरुष का शरीर आरम्भ करते हैं। वे ही जल श्रद्धा सोमवृष्टि अन्न और वीजरूप से द्यौपर्जन्य यह लोक पुरुष और स्त्री रूपी अग्नि में होम किये हुए, पुरुष का शरीर आरम्भ करते हैं) वह जीता है, जब तक जीता है, फिर जब वह मर जाता है, ॥ १३ ॥ तब वे इसको (मृत को) (चिता की) अग्नि के लिये ले जाते है, तब (वास्तव) अग्नि ही उसकी अग्नि होती है, समिधा, समिधा, धूम, धूम, लाट, लाट, अंगारे, अंगारे, चिंगाड़िया चिंगाड़िया होती हैं। इस (चिता की) अग्नि में देवता पुरुष को होमते हैं, उस आहुति से पुरुष चमकते हुए रंगवाला बनता है ॥ १४ ॥

वे जो उपरोक्त (पञ्चाग्नि विद्या) को जानते हैं (गृहस्थ भी), और वे जो जंगल में श्रद्धा के साथ सत्य (हिरण्यगर्भ) को उपासते हैं, वे अर्चि (लाट) को प्राप्त होते हैं, अर्चि से दिन को, दिन के शुक्ल पक्ष को, शुक्ल पक्ष से, उन छः महीनों को जिनमें सूर्य उत्तर को जाता है (उत्तरायण) महीनों से देवलोक को, देवलोक से सूर्य को, सूर्य से विद्युत् के स्थानों को, उन विद्युत् वासियों के पास अब एक मानस पुरुष (ब्रह्मलोक वासी पुरुष जो ब्रह्मा ने मन से रचा है 'शंकराचार्य') आता है वह उनको ब्रह्मलोकों में ले जाता है। वे उन ब्रह्मलोकों में तेजस्वी बनकर लम्बे वर्षों के लिये बसते हैं, उनकी पुनरावृत्ति (वापिस लौटना) नहीं है ॥ १५ ॥ (शाखान्तर में जो यहां 'इह' शब्द है, इससे यह अभिप्राय है कि इस कल्प में वापिस नहीं लौटते, कल्प बीतने के पीछे उनकी आवृत्ति होती है 'शंकराचार्य')

❀ केवल कर्मियों के लिये कृष्णगति (चन्द्र-लोक प्राप्ति) के मार्ग का वर्णन ❀

अब जो लोग यज्ञ, दान और तप के द्वारा लोकों को जीतते हैं (अपने भविष्यत् को सुधारते हैं) वे धूम को प्राप्त होते हैं, धूम रात्रि को, रात्रि से कृष्ण पक्ष को, कृष्ण पक्ष से उन छः महीनों को जिनमें सूर्य्य दक्षिण को जाता है, महीनों से पितृ लोक को, पितृलोक से चन्द्र को, वे चन्द्र में पहुंचकर अन्न बन जाते हैं, तब उनको वहां देवता खाते हैं (उपभोग करते हैं) जैसे (सोमयज्ञ) में ऋत्विज सोम राजा को बार २ पूर्ण करते हुए और घटाते हुए (उपभोग करते हैं)। उनको जब वह (कर्म जो उन्हों ने इस लोक में चन्द्रलोक की प्राप्ति के लिये किया है) क्षीण हो जाता है, तो वे फिर इसी आकाश की ओर वापिस होते हैं, आकाश से वायु को वायु से वृष्टि को वृष्टि से पृथिवी को। और जब पृथिवी पर पहुंचते हैं, तो अन्न बन जाते हैं, वे फिर पुरुषरूपी अग्नि में होम किये जाते हैं, उससे फिर वे स्त्री रूपी अग्नि में उत्पन्न होते हैं। इसतरह लोकों की ओर उठते हैं। वे इसीप्रकार ही चक्र लगाते हैं।

अब जो इन दोनों मार्गों को नहीं जानते, वे कीड़े पतङ्गे और जो कुछ मक्खी, मच्छर हैं (बनते हैं)॥ १६ ॥

द्रष्टव्य:—यहां यह निर्णय दिखलाया है कि वानप्रस्थ और संन्यासी उत्तर मार्ग को प्राप्त होते हैं, और वे गृहस्थ भी जो इस उपासना को जानते हैं। और जो गृहस्थ केवल कर्मी हैं, वे चाहें अग्निहोत्र वा दान वा तप इत्यादि किसी शुभ कर्म में रत हैं, वे दक्षिण मार्ग को जाते हैं, और जो कर्म और उपासना दोनों से दूर रहे हैं, वे यहीं छोटे २ जीव जन्तुओं की योनि में पड़ते हैं।

मरने के पीछे की चार अवस्थायें

(१) प्रथम वे लोग हैं, जिन्हों ने मनुष्य जन्म पाकर अपने आप को नहीं संभाला, और इस जन्म को यूंही गँवा दिया है, वह मनुष्य जन्म से नीचे (पशु आदि के जन्म में) गिरा दिये जाते हैं।

(२) दूसरे वह लोग हैं, जो न बहुत ऊँचे गये हैं और न बहुत नीचे गिरे हैं, किन्तु मिले जुले व्यवहारों में अपनी जीवन विता गए हैं, वे फिर मनुष्य जन्म को लाभ करते हैं।

(३) तीसरे वह लोग हैं, जो इस लोक में नेकी कमा गए हैं, वह अपनी कमाई का फल भोगने के लिये चन्द्रलोक में जाते हैं, और वहां उसका फल भोगकर फिर इस लोक में वापिस आते हैं।

(४) चौथे वह लोग हैं, जो नेकी के साथ अपने मालिक (परमात्मा) के प्रेम में मग्न हुए हैं, वह मरने के पीछे प्रकाश का रास्ता लेते हैं, और उत्तरोत्तर प्रकाश में प्रवेश करते हुए ब्रह्मलोक में पहुंचकर मुक्त हो जाते हैं, जब कि दूसरे लोग अंधेर में जाते हैं, और बस उतने मात्र का फल भोगकर यहीं वापस आते हैं।

इनसे भिन्न एक पांचवीं अवस्थाः—

यह चौथे प्रकार के लोग जो परमात्मा के प्रेम में मग्न हुए हैं, यदि वह अपर ब्रह्म की उपासना करते करते ही, पर ब्रह्म के साक्षात् दर्शन करने से पहिले ही, इस लोक से चल देते हैं, तब वह ब्रह्मलोक में जाकर मुक्त होते हैं, पर यदि वह अपर ब्रह्म की उपसना द्वारा क्रमशः पर ब्रह्म के साक्षात्कार तक जा पहुंचे हैं, तो वह देह को छोड़ते ही मुक्त हो जाते हैं, उनके लिये किसी मार्ग और किसी लोक की अपेक्षा नहीं है।

प्रमाणः—चन्द्रलोक से आनेवालों के विषय में निम्न-प्रकार है—

"तद्य इह रमणीय चरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनि मा पद्येरन् ब्राह्मण योनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्य योनिं वा। अथ य इह कपूय-चरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनि मा पद्येरन् श्वयोनिं वा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिं वा"
छान्दो० ५।१०।७

अब वह जिनका कि वर्ताव यहां रमणीय (सुहावना, शुद्ध) रहा है, वह जल्दी उत्तम जन्म को प्राप्त होंगे, ब्राह्मण जन्म को, वा क्षत्रिय के जन्म को, वा वैश्य के जन्म को। पर वह जो यहां नीच वर्ताव वाले रहे हैं, वह जल्दी नीच योनि को प्राप्त होंगे, कुत्ते की योनि को वा सूअर की योनि को वा चाण्डाल की योनि को। चन्द्रलोक से उतरने के विषय में देखिये—

"तस्मिन् यावत् संपातमुषित्वाऽथैतमे वाध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते यथेतम्०" छान्दो० ५।१०।३

"वह वहां (चन्द्र मंडल में) उतनी देर रहते हैं, जबतक उनके कर्मक्षीण नहीं होते, इसके पीछे वह उसी मार्ग से फिर लौटते हैं; जैसे गये थे।" जाने में तो पृथिवी से चन्द्रलोक को गए थे, अब आने में चन्द्रलोक से पृथिवी को लौटते हैं, सो जो मार्ग ऊपर जाने का था वही अब नीचे उतरने का है जैसेः—

"पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसम् ॥ ४ ॥ आकाशमाकाशाद्वायुं। वायुर्भूत्वाधूमोभवति

धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥ ५ ॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति०" ॥ ६ ॥ छा० ५। १०

आते समय भी वैसेही चन्द्रलोक से आकाश में आये हैं। (चन्द्रलोक से पृथिवी लोक की ओर वापिस लौटने के विषय में) "पहले आकाश को (लौटता है, आकाश से वायु को वायु बनकर वह (यजमान) धूम बनता है, धूम बनकर धुन्ध बनता है ॥ ५ ॥ धुंध बनकर मेघ बनता है, मेघ बनकर बरसता है" ॥ ६ ॥ अर्थात् चन्द्रमण्डल में जो उनका शरीर था, वह अब विलीन होकर आकाश में अकाश की तरह अतिसूक्ष्म रूप होकर उतरता है, इसीप्रकार नीचे उतरता हुआ वायु और धूम आदि में ऐसा मिल जाता है, कि कोई भेद प्रतीत नहीं होता, इस आशय से वायुरूप, धुन्धरूप, और मेघरूप बन जाता है, यह कहा है। तत्पश्चात् कहा है :—

"त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते। अतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥

छा० ५। १०। ६ ॥

फिर वह चावल, जौ, औषधि, वनस्पतियें, तिल, उड़द, यह सब होते हैं, इनसे उनका निकलना अति कठिन हो जाता है, निश्चय करके जो जो उस अन्न को खाता है और जो गर्भाधान करता है फिर वह उस गर्भ में चला जाता है ॥ ६ ॥

श्री शंकराचार्य्य कठिनाइयों को निम्नप्रकार वर्णन करते हैं —

सबसे पहले कठिनाई यह है कि मेघ के बरसने के सहस्रों स्थान हैं, यदि वह मेंह के साथ पर्वत की चोटी पर बरसे और

वहां से नीचे ढल कर नदी में बहते हुए समुद्र में जा पहुंचे। वा किसी मछली अथवा अन्य समुद्रिक जन्तु ने पी लिये, फिर उसको किसी दूसरे जन्तु ने खा लिया, और वह वहांही जब उस जन्तु के साथ समुद्र में विलीन हुए, तब समुद्र के जलों के साथ आकाश में खींचे गए, (सो यह उनका एक वार का पृथिवी पर उतरना तो निष्फलही चला गया) फिर मेह की धाराओं के साथ मरुभूमि (रेगस्तान) में वा पत्थरों पर पड़े रहे। यहां वह कदाचित् व्याल और हिरण आदि से पिये गये, उनको किसी दूसरे जन्तु ने खा लिया, और उसका फिर किसी दूसरे ने। इसप्रकार वह एक लंबे चक्र में पड़ जाते हैं। अब जब वह इन ओषधि वनस्पतिओं में आते हैं, तो उन पहली कठिनाइयों से निकल आते हैं, और नई कठिनाइयों में पड़ते हैं कदाचित् उन पौधों में आए, जो किसी ने नहीं खाये और सूख गए। कदाचित् उन स्थावरों में आए, जो खाये गये हैं, तथापि यदि वह बच्चों से बुढ़ों से खाये गये, वा उनसे खाये गये जो गृहस्थ नहीं, तो इसतरह यह अवसर भी वह अपने नये जन्म का खा देते हैं। यदि किसी युवक गृहस्थ से खाये गये, पर वह वन्ध्यवीर्य है, वा स्त्री वन्ध्या है, तो फिर उनका जन्म लेने का यह अवसर भी चूक जाता है, फिर अब कभी जाकर वह समर्थ पुरुष से खाये जाते हैं, और समर्थ माता की कुक्षि में जाते हैं, तब वह नया जन्म ग्रहण करते हैं वैसा जन्म, जैसे पिता के शरीर में गए हैं, तब वह नया जन्म ग्रहण करते हैं वैसा जन्म, जैसे पिता के शरीर में गए हैं, और यह उनका जाना कर्मानुसार होता है, इसमें कुछ उलट पलट नहीं होता। परन्तु स्मरण रहे कि—यह कठिनाइयां उन्हीं के लिए हैं जो चन्द्रमंडल से उतरे हैं, और स्थावरों (घास वा पौधों) के जन्मों में नहीं जाएंगे। हां जो पापी जन इस योग्य हैं, कि

वह स्थावर जन्मों में डाले जाएं, वह शीघ्र अपने कर्मानुसार स्थावर जन्मों में चले जाते हैं।

पर यह जो चन्द्रमण्डल से उतर कर स्थावरों में से होकर आए हैं, उनके लिये स्थावरों में जाना उनके किसी कर्म का फल नहीं, किन्तु आगे जो ब्राह्मण आदि का जन्म होना है, उसमें जाने के लिये यह उनका मार्ग है। इसीलिये वह उन स्थावरों में आकर कोई सुख दुःख नहीं भोगते। क्योंकि स्थावर उनका शरीर नहीं होता, किन्तु वह जैसे पहले आकाश, धूएं, धुंध और मेघ में मिल गए थे, ऐसेही अव स्थावरों में मिल जाते हैं। और इसीलिये उन अनाजों के कूटने पीसने से वह उनसे निकल नहीं जाते, जब कि वह जीव उस समय उनसे निकल जाते हैं, जिनका कि वह देह है। किन्तु यह उस अनाज में ही रहकर खुराक के द्वारा उनके अंदर पहुंचते हैं, जिनके यहां उन्हें जन्म ग्रहण करना है। इसलिए **"य इह रमणीय चरणाः...... कपूय चरणाः......"** शुद्ध वर्तावेवाले.......और मैले वर्तावेवाले.......इत्यादि से ब्राह्मण आदि का जन्म ग्रहण करने में कर्मों का सम्बन्ध बतलाया है, इससे पूर्व नहीं, क्योंकि इससे पूर्व (धान आदि में जाना) उनका रस्ता है, न कि कर्मानुसार जन्म। यहाँ यह अभिप्राय नहीं, कि स्थावर जीव योनि (उपभोग का स्थान) नहीं, वेशक यह उनका उपभोग स्थान है, जो पाप का फल भोगने के लिये स्थावर बने हैं, किन्तु चन्द्र मंडल से उतरनेवालों का यह उपभोग स्थान नहीं है।

"स सोमलोके विभूतिं मनुभूय पुनरावर्त्तते"

प्रश्न० उ० ५।४

लिखा है कि वह चन्द्रलोक में ऐश्वर्य को अनुभव करके वापिस लौटता है। पर जब वह नीचे उतरते हैं, तो ज्ञान से

शून्य (बेख़बर) रहते हैं, जब तक कि उनको फिर मनुष्य जन्म देकर ब्रह्म को पहुंचने के योग्य बना दिया जाता है।

द्रष्टव्य—इन मार्गों के वर्णन में उपनिषदों के अंदर भेद क्यों पाया जाता है ? इसका उत्तर यह है कि भेद होने पर भी विरोध कोई नहीं, किसी जगह किसी एक प्रसिद्ध बात का ही वर्णन है, और किसी जगह सविस्तर वर्णन है।

❀ जन्म और मरण का सम्बन्ध ❀

हरएक प्राणी जन्म लेता है, और जो जन्म लेता है उसको अवश्यही मरना है। हरएक प्राणीमात्र के लिये मरना अपरिहार्य है। जो अपरिहार्य है अर्थात् जो बदला नहीं जा सकता, उसके विषय में भय, शोक मोह धारण करना वास्तविक मूर्खता का ही काम है।

मनुष्य के व्यवहार में एक बड़ा आश्चर्य है, कि वह जन्म के समय आनन्द मानता है, और मृत्यु के समय दुःख करता है। परंतु उसको पता नहीं है, कि किसी स्थान पर किसी का मृत्यु न हुआ, तो दूसरे स्थान पर किसी का जन्म भी नहीं हो सकता। अर्थात् यदि आप पुत्र जन्म का आनन्द लेना चाहते हैं तो इस आनन्द के लिये किसी के मृत्यु का दुःख किसी न किसी को स्वीकार करना ही चाहिये। एक स्थानपर जिसका मृत्यु होता है उसी का दूसरे स्थानपर जन्म होता है, इसलिये स्पष्ट है, कि मृत्यु होने के विना जन्म नहीं हो सकता। यही कारण सच्चे सत्पुरुष न तो जन्म से आनन्दित होते हैं और न मृत्यु से डरते हैं।

'जो जन्म से आनन्दित होगा उसको मृत्यु से अवश्यमेव दुःख होगा।'

जन्म और मृत्यु ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। एक के कारण

दूसरा रहता है, इसलिये "सुखदुःख आदि द्वन्द्वों को समान समझकर, हरएक अवस्था में हमें अपने कर्त्तव्य में तत्पर होना चाहिये, और सदा अपना मन स्थिर, शांत और गंभीर रखने का यत्न करना चाहिए।"

जनता को निर्भय करने के उच्च ध्येय की सिद्धि के लिये राष्ट्रीय वीर और देश हितैषी विद्वान् अपनी आहुति राष्ट्रीय महायज्ञ में अर्पण करके कीर्तिरूप से अजरामर होते हैं। इनके हृदय में मृत्यु का भय यत्किंचित् भी नहीं होता है। राष्ट्र के इतिहास में ऐसे सुवीरों के नाम शुशोभित हुए हैं। इन वीरों के अन्तःकरण देखने से पता लगता है कि वहां मृत्यु का भय नहीं था। उनके अन्दर मृत्यु के साथ युद्ध करने का साहस था। इसलिये मृत्यु के समय उनका हृदय आनन्द से परिपूर्ण होता था। इन वीरों के चरित्र देखने से हमें पता लगता है कि, मनुष्य का मन ऐसा निर्भय भी बनाया जा सकता है। परन्तु ये इष्ट संस्कार बचपन से ही मनुष्य के मन पर होने चाहिये, बड़ी अवस्था में विशेष परिश्रम से हो सकेगा।

❀ मरण का स्वरूप ❀

जन्म और मरण कैसा होता है, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और मृत्यु इनकी घटना कैसी है, इसका अब विचार करना है। इसका उत्तम ज्ञान होने के लिये मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का पता हमें लगना चाहिए। मनुष्य का जो यह बाहिर का स्थूल शरीर दिखाई देता है, उसके अतिरिक्त उसके अंदर तीन चार शरीर और विद्यमान हैं। ये सब शरीर मिलकर मनुष्य होता है। इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित कोष्टक से हो सकता है—

कोश	देह	साधन	तत्त्व
अन्नमय कोश ...	स्थूलशरीर ...	बाह्यदेह ...	पंचमहाभूत

प्राणमय ,, ...	सूक्ष्मश० ...	प्राणइन्द्रिय ...	वायुतन्मात्रा
मनोमय ,, ...	कारण० ...	मन,चित्त,अहंकार ...	अहंकार
विज्ञानमय ,, / आनन्दमय ,,	...महाकारण० ...	बुद्धिकेवलता ...	महतत्त्व / मूलप्रकृति

इन पदार्थों का चित्र निम्नप्रकार बन सकता है :—

मूल प्रकृति ...	आत्मा	केवलता।
महतत्त्व ...	आनन्दमय कोश ...	बुद्धि।
अहंकार ...	विज्ञानमय कोश ...	मन,चित्त, अहंकार।
पंच तन्मात्र ...	मनोमय कोश और ... प्राणमय कोश	सूक्ष्मशरीरऔरप्राण।
पंचमहाभूत ...	अन्नमय कोश ...	स्थूल शरीर।

इतने साधनों का और शरीरों का उपयोग जीव करता है। इस बात को प्रथम विचार की दृष्टि से समझना चाहिए। तत्पश्चात् मृत्यु का रूप ध्यान में आ सकता है।

जागृति में मनुष्य स्थूल शरीर के साथ कार्य करता है। **स्वप्न** में सूक्ष्म शरीर के साथ रहता है, और **सुषुप्ति** में कारण शरीर में विराजता है। स्वप्न में स्थूल शरीर का सम्बन्ध कम होता है, और सुषुप्ति में स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के साथ सम्बन्ध शिथिल होता है इसका स्पष्टी करण आगे देखिये—

'जागृति' में सब शरीरों का कार्य स्थूल देह के साथ होता रहता है, 'स्वप्न' अवस्था में अर्थात् जब स्वप्न आते हैं तब स्थूल शरीर शिथिल रहता है और कार्य नहीं करता। परन्तु इस अवस्था में स्थूल शरीर के साथ प्राण का सम्बन्ध रहता है, और मन ही संकल्प विकल्प करता रहता है। मन में जो संकल्प विकल्प आते हैं वे ही प्रायः स्वप्न में दिखाई देते हैं।

अपने ही मन के संकल्प विकल्पों के साथ इस समय और भी कल्पनायें सम्मिलित होती है। सर्व व्यापक अहंकार और महतत्त्व में जो संपूर्ण मानव जाति के मानसिक लहरों के परिणाम गुप्त रहते हैं, उनके साथ इस समय उनका सम्बन्ध आता है, और अघटित घटनाओं का भी इस समय उसको प्रत्यक्ष हो सकता है। इसलिये कइयों को ऐसे विलक्षण स्वप्न आते हैं, कि जिनका भूत वर्तमान अथवा भविष्यकालीन बातों के साथ स्पष्ट सम्बन्ध अनुभव में आता है। यह सारांश से स्वप्न अवस्था का स्वरूप है। 'सुषुप्ति' अवस्था में मन भी लीन हो जाता है। और साथ साथ सूक्ष्म और स्थूल देह भी सो जाते हैं। मन लीन होने के कारण इस समय कुछ भी ज्ञान नहीं होता। परंतु इस अवस्था में विशेषता यह है, कि जो विचार सुषुप्ति के प्रारम्भ में रहता है, वही जागृति के आरम्भ में रहता है, और सुषुप्ति में भी वही विचार कार्य करता है। इसलिये शुभ विचार ही जागृति के अन्त में मन में धारणा करने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसा अभ्यास होने से न केवल प्रतिदिन के व्यवहार में लाभ होगा, प्रत्युत मृत्यु के पश्चात् भी इससे फायदा होगा।

(१) सुषुप्ति में तथा स्वप्न में शरीर स्थिर हो जाता है। इस समय शरीर इसलिये जीवित होता है, कि प्राण का संबंध टूटता नहीं। यदि प्राण का सम्बन्ध टूट जायगा तो स्वप्न अवस्था में और मृत्यु में कोई भेद ही नहीं रहेगा। (२) प्राण का सम्बन्ध रहने से जैसा स्वप्न अवस्था का अनुभव होता है, वैसा ही अनुभव प्राण का सम्बन्ध, स्थूल शरीर के साथ, टूट जाने पर भी मृत्यु के पश्चात् हो सकता है। क्योंकि संकल्प विकल्प करने वाला सूक्ष्म शरीर मृत्यु के पश्चात् भी विद्यमानही रहता है, यह बात पूर्व लेखसे स्पष्ट होगी। (३) मृत्यु के पश्चात् स्थूल शरीर पृथिवी पर रहता है, और प्राण के साथ अन्य शरीर पर-

मेश्वर के नियोजित मार्ग से चलने लगते हैं। यद्यपि स्थूल शरीर का कार्य इस अवस्था में बन्द होता है, तथापि सूक्ष्म शरीर कारण शरीर आदि के धर्म गुप्त नहीं होते। अर्थात् प्रतिरात्रि के समय स्वप्न में जो अवस्था हरएक अनुभव करता है वही अवस्था मृत्यु के पश्चात् अनुभव में आती है। यदि पाठक अपने सब शरीरों के गुण धर्मों का विचार अपने मन में स्थिर करेंगे, तो उनको पता लग जायगा, कि स्वप्न में और मृत्यु में बहुत ही अल्प अन्तर है। (४) स्वप्न का अनुभव क्या है? ऐसा प्रश्न यहां हो सकता है। स्वप्न का अनुभव हरएक जानता है। यदि किसी का शरीर फोड़ा, फून्सियों, ज्वर आदि के कष्ट पूर्ण बना होगा, तो उन कष्टों का अनुभव स्वप्न में उसको नहीं होता तथा सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा में भी नहीं होता। हरएक का अनुभव यही है। इसका यही तात्पर्य है कि इस स्वप्न अवस्था में स्थूल शरीर का सम्बन्ध छूट जाता है और फोड़े आदि स्थूल शरीर पर ही होते हैं।

इसीप्रकार जब बीमार मर जाता है, तब वह सूक्ष्म शरीर में जाकर अपने ख़याली दुनिया में रममाण होता है। इसी कारण मरण आतेही उस बीमार को बड़ा ही आराम मिलता है, क्योंकि सब कष्ट जो इस स्थूल शरीर के ज्वर आदि के कारण उसको भोगने पड़ते थे, स्थूल शरीर का सम्बन्ध छूट जाने से, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं। इसलिये मृत्यु की अवस्था कष्ट की नहीं है, बल्कि आराम की है। कई कहते और समझते हैं कि मरण के समय बड़े कष्ट होते हैं, परन्तु यह बिलकुल भ्रम है। **"मरण उतनाही सुगम है कि जितना जागृति से स्वप्न में जाना आसान है"**। स्वप्न में प्राण का सम्बन्ध रहता है और मृत्यु में हट जाता है, इतना ही है। परन्तु इस कारण स्वप्न की अपेक्षा मृत्यु के समय अधिक कष्ट

होते हैं ऐसा मानने के लिये कोई विशेष कारण नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि, जो अपने सब शरीरों का विज्ञान रखते हैं उनको यह बात स्पष्ट होती है कि, मृत्यु की अवस्था बड़ी आराम की होती है। जैसा स्वप्न में मानसिक कल्पना की सृष्टि का अनुभव लेनेवाला मनुष्य दुनियादारी के भयानक झगड़ों को भूल जाता है और अपनी कल्पना में ही मस्त रहता है; वही बात मृत्यु के समय अनुभव में आती है। इसीलिये प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन की निद्रा के पूर्व प्राप्त होनेवाली स्वप्न की अवस्था का विचार करके मृत्यु के पश्चात् की अवस्था की कल्पना कर सकता है। इसमें कोई विशेष कठिनता नहीं है जागृति से स्वप्न और सुषुप्ति प्राप्त होना कितना आसान है इसका प्रत्येक अनुभव करता है, वही अनुभव मृत्यु के पश्चात् आता है।

यहां कई कहेंगे कि मृत्यु के समय जो उस मरने वाले को कष्ट होने का अनुभव दूसरों को दिखाई देता है, उसका कारण क्या है? वह केवल देखनेवालों का काल्पनिक भय है। क्योंकि इस स्थूल शरीर द्वारा सुख अथवा दुःख का अनुभव करने के सबही साधन उसके पूर्व ही हट जाते हैं। इसलिये स्थूल शरीर के जो अन्तिम प्रयत्न होते हैं, उनसे आत्मा को किसी प्रकार के कष्ट नहीं होते। जबतक बीमार बोलता रहता है, और उत्तर देता है, तबतक उसको कष्टों का अनुभव है, परन्तु जिस समय अन्तिम बेहोशी होती है, उस समय से वह स्वप्न के आनन्द में पहुंच जाता है और उसको शरीर के कष्टों का कोई पता नहीं होता। **"यही परमात्मा की अपार दया है कि कष्टों के पहिले ही बेहोशी और पश्चात् स्वप्न का सुख उसने रखा है।"**

स्थूल शरीर का सम्बन्ध छूटने के पूर्व ही उसको स्वप्न के

समान अवस्था प्राप्त होती है, और इसी अवस्था में वह आत्मा मरने के समय और मरने के पश्चात् रहता है। स्वप्न की अवस्था मन के संस्कार और इच्छा की प्रधानता के अनुकूल होती है। यदि कोई मनुष्य योगाभ्यास में रुचि रखता हुआ अनुष्ठान करता रहता है, तो उसको उक्त विचारों के ही स्वप्न आजायगे। कोई दूसरा मनुष्य सार्वजनिक हित के कार्य करने में अपने आपको लगाता है, तो उसको वैसेही स्वप्न आँयगे। जिसके जैसे मनोभाव होंगे वैसेही स्वप्न उसको आसकेंगे। इसलिये प्रतिदिन के स्वप्नों के समानही मृत्यु के समय अथवा तत्पश्चात् के स्वप्न भी उसके जीवन के विचारों के अनुकूलही आवेंगे। और उन विचारों के स्वप्नों में ही वह मस्त रहेगा। यहां तक की उसको अपने मृत्यु का भी पता नहीं होगा और अपने सम्बन्धियों का भी विचार उसको नहीं आवेगा। हां यदि उसको अपने बाल बच्चों का ही केवल प्रेम होगा, तो वह उस स्वप्नमें अपनी ख्याली बाल बच्चों के साथ ही खेलता और प्रेम करता रहेगा। इसी प्रकार अन्य व्यवसाई अपने व्यवसाय के स्वप्न में मस्त रहेगा। यह मरणोत्तर की स्थिति है।

मरण के पश्चात् दो अवस्थाएं प्राप्त होती हैं, एक यह स्वप्न के समान अवस्था और इसके पश्चात् सुषुप्ति के समान दूसरी अवस्था। इन अवस्थाओं का काल आयुष्य की घटनाओं के अनुरूप छोटा अथवा बड़ा हो सकता है। जैसा एक दिन का बालक यदि मर गया तो उसको थोड़े समय तक ही इन अवस्थाओं में से गुजरना होगा; तथा राजकीय और सामाजिक बड़ी बड़ी घटनाओं में जो सज्जन रात दिन कार्य करते हैं; उसके लिये ये दोनों अवस्थाएं बड़ी लम्बी हो सकती हैं, इसलिये इस विश्रांति की अवस्थाएं होती हैं, इसलिये इस जन्म में जिस प्रकार का कार्य हुआ होगा उस प्रकार की उसको विश्रान्ति मिलेगी, और

उस विश्रान्ति के कारण द्वितीय जन्म में द्विगुणित उत्साह प्राप्त होगा। जैसा शारीरिक मेहनत करनेवाला मजदूर आठ दस घंटे सो जाता है, परन्तु बैठकर काम करनेवाला बाबू बड़ी मुश्किल से पांच या छः घंटे नींद पाता है, उसीप्रकार मरण के पश्चात् भी होता है। सूक्ष्मशरीरों की थकावट जिसप्रकार हुई होगी उसप्रकार उसको विश्रांति की आवश्यकता होगी। इसका अन्दाज करने के लिये हिसाब उलटा करना चाहिए, अर्थात् जगत् में शारीरिक काम करनेवाले मजदूर पेशा आदमी से लिखने पढ़ने का काम करनेवाले बाबू जी को स्थूल देह में निद्रा कम आती है परन्तु इसके उलटा मृत्यु के पश्चात् होता है। *विचार का कार्य करनेवालों को मरणोत्तर की विश्रांति अधिक* होती है और शारीरिक काम करनेवालों को कम होती है। तिदिन की निद्रा से शरीर की थकावट दूर होती जाती है, और मृत्यु के कारण अन्य सूक्ष्म देहों की थकावट दूर होकर उनमें फिर कार्य करने की शक्ति आती है। इससे पाठक जान सकते हैं कि मृत्यु के कारण कितना आवश्यक कार्य हो रहा है।

स्थूल शरीर का रोगों के कारण अथवा आयु के कारण जीर्ण होना, अपघात से निकम्मा बनना, अथवा विचार आदि के कार्य अधिक करने के कारण उन सूक्ष्म देहों की शक्ति क्षीण होनी, इत्यादि कारण हैं कि जिनसे मृत्यु होता है। योगी जन इन हानियों से अपने आप को बचाते है, इसलिये योगी अपनी आयु इच्छा और प्रयत्नानुसार बढ़ा सकते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि शरीरों का क्षीण न होने देना, योगसाधन का मुख्य हेतु है। इसलिये योग साधन अल्प भी किया जायगा तो उसी अनुसार लाभ अवश्य होगा। अब इसके आगे धर्म और मृत्यु के सम्बन्ध में लिखा जावेगा:—

❁ धर्म और मृत्यु ❁

धर्म की सहायता से मृत्यु का भय दूर हो जाता है। धर्म नियमों का मूल हेतु स्थूल देह, और कारण देहों को शुद्ध पवित्र और बलिष्ठ बनाना है। प्रत्येक देह का विकाश करके उसको परिपूर्ण बनाना धर्म के नियमों का मूल उद्देश्य है। साधारण मनुष्यों के सूक्ष्म और कारण देह विकसित नहीं होते। मल्ल और पहलवानों के स्थूल शरीर बड़े विशाल होते हैं, परन्तु योगी की दृष्टि से उनके भी शरीर निर्दोष नहीं होते, यही कारण है कि कोई पहलवान दो तीन सौ वर्ष जीवित नहीं रहता, प्रत्युत साधारण मनुष्यों से भी न्यून आयु में कदाचित् इनकी मृत्यु होती है। निर्दोष शरीर होने का परिणाम दीर्घायु है। शरीर का बल, आरोग्य और दीर्घ आयु ये तीन परस्पर भिन्न धर्म हैं। शरीर निर्दोष होने से आरोग्य और दीर्घ आयु अवश्य प्राप्त हो सकती है, बल अन्य कारणों पर निर्भर है। पहलवान बल संपादन करते हैं परन्तु साथ साथ शरीर को निर्दोष न रखने के कारण आरोग्य और दीर्घायु उनको नहीं मिलती। साधारण मनुष्यों में शारीरिक बल को धारण करने-वाले बहुत मिल सकते हैं। परन्तु सूक्ष्म और कारण देहों का बल प्राप्त करनेवाले क्वचित् किसी स्थान पर होंगे। सूक्ष्म देह के विकाश के साथ प्रबल इच्छाशक्ति होती है। अपने देह में तथा अन्यों के देहों में अभीष्ट स्थिति केवल इच्छाशक्ति से उत्पन्न करने की सिद्धि जिनको होती है, ऐसे सज्जनों का सूक्ष्म देह विकसित हुआ है, ऐसा समझिये।

बड़े बड़े प्रबन्ध के कार्य करनेवाले, उद्यमी साहसी, उत्तम वक्ता सेनानी, राष्ट्र के नेता, उदारबुद्धि पुरुष, जिनके पीछे सहस्रों पुरुष चलते हैं, उनकी इच्छाशक्ति की प्रबलता विलक्षण

होती है, इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता। साधारण मनुष्यों से ये नर विशेष शक्तिशाली होते हैं इसका उक्त हेतु है। कारण देह का विकाश इससे कठिन है।

साधु, सत्पुरुष, संत, मुनि, ऋषि, महंत आदि जो धार्मिक क्षेत्र में वड़े निःश्रेयस संपन्न महान् आत्मा होते हैं, उनका कारण शरीर वड़ा विकसित हुआ होता है। इनसे सुविचार का स्रोत जनता में फैलता है। मत मतान्तरों के विवादवाले वहीं तक रह जाते हैं। इसलिये सच्चा धार्मिक मनुष्य मृत्यु से घवराता नहीं, क्योंकि मृत्यु की अवस्था का उसको ठीक ठीक पता होता है। उक्त तीन देह एक के अंदर दूसरा और दूसरे के अंदर तीसरा, ऐसे रहते हैं। और प्रत्येक देह के रंग रूप आकार उस मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल होते हैं। **'सात्विक मनुष्य का शुभ्रवर्ण, राजसिक मनुष्य का पीत अथवा रक्तवर्ण तथा तामसिक मनुष्य का नील अथवा कृष्णवर्ण प्रसिद्ध ही है।'**

धार्मिक मनुष्य इन देहों की व्यवस्था जानता है, इसलिये मृत्यु को वह ऐसाही समझता है जैसा **'पुराने कपड़े उतार कर नये पहिनना होता है।'** मनुष्य अपने शरीरपर कुरता, अंगरखा और दुशाला पहिनता है। दुशाला फटने पर उसको उतार देगा दूसरा पहिनेगा। इसीप्रकार **जीवात्मा कारण शरीर का कुरता, सूक्ष्म शरीर का अंगरखा; और स्थूल शरीर का दुशाला पहनता है'**। जिस समय यह फट जाता है उस समय उसको उतार कर दूसरा पहेनने की तैयारी करता है, यही मृत्यु है। इसलिये यह आवश्यक भी है। श्रीमद्भगवद्गीता में महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र जी ने भी कहा है—

"वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णाति नरोऽपराणि । तथाशरीराणिविहायजीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही" ॥ गी० अ० २ । २२

अथवा यों समझिये कि घर से बाहर शहर में जाने के लिये अनेक कपड़े पहिने जाते हैं और घर पर उतारे जाते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा अपने घर से जब जगत् में आने लगता है तब वह उक्त वस्त्र पहिनता है, परन्तु जब यह अपने घर वापस जाता है, तब कपड़ों को उतारता है। यह कपड़ों को उतारना ही मृत्यु है, परन्तु इस मृत्यु के कारण जीवात्मा को वह आनन्द और आराम मिलता है, कि जो घर में आने से एक उत्तम गृहस्थी को मिलता है; वास्तविक रीति से इससे भी अधिक आराम उसमें है। इस आराम का अल्प अंश प्रतिदिन निद्रा में हरएक प्राणी को मिलता है। यही आनन्द विशेष दीर्घ कालपर्यन्त मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होता है। यही आनन्द समाधि द्वारा शुद्ध ज्ञानपूर्ण होने के कारण सात्विक आनन्द के रूप में योगी को मिलता है और उसी समाधि के आनन्द का विस्तार मुक्ति में है।

निद्रा, मृत्यु, समाधि, मुक्ति आदि में तम और सत्य का जो भेद है वह पाठक विचार से जान सकते हैं। जब उनके मन में उक्त कल्पना ठीक प्रकार आ जायगी तब उनको मृत्यु की ठीक कल्पना हो सकती है।

❀ इच्छामरण की सिद्धि ❀

योग द्वारा इच्छामरण की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। सिद्ध योगी सूर्य चन्द्र के विपर्यय को जानकर चन्द्रमा को मूर्द्धा में दृढ़ करता है और कुंडलिनी को दृढ़ करके सूर्य्य को ऊपर जाने की क्रिया को रोक कर इच्छामरणी होता है जैसा कि, '**भीष्म**

पितामह' ब्रह्मचर्य के प्रताप और योगाङ्गानुंष्ठान से इच्छा मरण प्राप्त कर गये थे । आगम शास्त्रकार कहते हैं कि०—

"सर्वेषामपि जन्तूनामूर्ध्निर्तिष्ठति चन्द्रमाः ।
अधोभागे रविः प्रोक्तो मृत्यु काले विपर्ययत् ॥

कुल जन्तु के मूर्द्धा स्थान में चन्द्रमा मनो व्योहार साधक वस्तु की स्थिति है, अधो भाग में रविः—अग्नि की स्थिति है परन्तु मृत्युकाल में चन्द्रमा-वीर्य नीचे अधोभाग में जाता है और अग्नि मूर्द्धा में जाता है ।

योगी अपनी इच्छा से जिस समय चाहे मर सकता है । रोग आदिकों से मरना साधारण मनुष्यों के लिए है । पूर्ण दीर्घआयु का उपभोग कर अथवा इस लोक का धार्मिक काम समाप्त करके, अपनी इच्छा से प्राणों का निरोध करके मरना इच्छामरण कहलाता है । प्राणायाम की सिद्धि होने के पश्चात् यह अधिकार प्राप्त हो सकता है ।

स्थूलदेह के साथ सूक्ष्मदेह का प्राण सम्बन्ध है । प्राणायाम से यह सम्बन्ध वलिष्ट होता है, इसलिये योग्यरीति से प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त करनेवाला अकालमृत्यु से मरेगा नहीं, तथा अपनी इच्छा से इस सम्बन्ध को जब चाहे तोड़ भी सकता है, इसलिये उसको इच्छामरण साध्य हो सकता है ।

❀ साधन विधि ❀

(१) माता पिता के शुद्ध रजवीर्य से उत्पत्ति होवे । (२) घर के और परिवार के लोग धार्मिक और योग साधन करनेवाले हों । (३) देश दुर्भिक्ष से रहित और निरोग होना चाहिए । (४) समाज निरुपद्रवी होवे । (५) आठ वर्ष की आयु से प्राणायाम का अभ्यास विधिपूर्वक होनी चाहिए । (६) उस के पास चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष आदि किसी अवस्था में न आवें ।(७) धार्मिक और

यौगिक वायुमंडल में उसका प्राथमिक आयु व्यतीत होना चाहिए।

इतनी अवस्था प्राप्त होने पर तब कहीं उसको प्राणवश हो सकता है। और प्राणवश होने से उक्त सिद्धि हो सकती है। साधारणतः विलक्षण इच्छाशक्ति के प्रभाव से भी कुछ दिन तक अपना मृत्यु दूर किया जा सकता है, अथवा पास भी बुलाया जा सकता है।

तात्पर्य—इच्छामरण की सिद्धि काल्पनिक नहीं है। विचारी पाठक अपनी कल्पना से उसका थोड़ा सा अनुभव भी कर सकते हैं। जब ग्राम में हैजे आदि की बिमारी फैलती है, तब मन के दुर्बल मनुष्य समझने लगते हैं कि, "शायद यह हैजा मुझे होगा और मैं मरजाऊंगा"। निरंतर ऐसे क्षुद्र विचार मन में रहने के कारण इच्छाशक्ति (Will-Power) कमजोर होती है और उससे उनका शरीर बीमारी बढ़ने के लिये अनुकूल बन जाता है। अंत में वह उस बीमारी से मर जाता है। आप विचार करेंगे यह भी इच्छामरण ही है, परन्तु इसमें मृत्यु को पास बुलाया गया है। यह शक्ति विरुद्ध रूप से काम में लायी जायगी, तो मृत्यु दूर भी हो सकता है। अर्थात् ऐसे समय में मृत्यु पर जय प्राप्ति हो सकती है। "मैं परमेश्वर का भक्त हूं, इसलिए मैं अकाल में नहीं मर सकता।" इस विचार को प्रभु की भक्ति के साथ में परिपुष्ट करने से इच्छाशक्ति बलवान होती है और उसके कारण शरीर भी रोगों का निवारण करने के योग्य हो जाता है। इसप्रकार भी मृत्यु दूर होता है। जो लोग उत्तर आयु में प्राणायामादि प्रयत्न करेंगे उनको कुछ न कुछ लाभ होगा ही; परन्तु प्रथम आयु से योग्य प्रयत्न करने वालों के समान उनको लाभ नहीं हो सकता। तथापि हरएक उमर में योग्य रीति से अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए।

❀ अमरत्व की प्राप्ति ❀

अमरत्व की प्राप्ति होती है, ऐसा निश्चय से उपदेश करने वाले मंत्र वेद में अनेक हैं। यदि योग आदि साधनों से मृत्यु हट जाता है, तो ऋषि मुनियों का मृत्यु क्यों हुआ? ऐसा प्रश्न यहां उपस्थित हो सकता है। उसके उत्तर में यह है कि मृत्यु जो होता है, वह स्थूल शरीर का होता है। कारण शरीर का मृत्यु नहीं होता। कारण शरीर में आत्मा रहता है। यदि योग के ध्यान धारणादि साधनों से यह अनुभव मनुष्य को हो जायगा, कि मैं कारण शरीर का निवासी हूं, और मैं स्थूल शरीर को साधन रूप से वरतता हूं तथा कारण शरीर सदा रहता है और स्थूल शरीर बनता और विगड़ता है; तो उसका अनुभव आ जायगा, कि मृत्यु आता है, वह मेरे साधन को छिन्नभिन्न करता है और साधन के नष्ट होने पर भी मैं पूर्ववत् ही रहता हूं तथा स्थूल शरीर के मृत्यु के कारण मुझ में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस ज्ञान और अनुभव के पश्चात् उसको अमरपन का ही सदा अनुभव रहेगा, और अपने शरीर का नाश देखता हुआ भी वह अपने अमरत्व में मस्त रहेगा। उदाहरण—हम अपने मकान का विचार करें। मकान टूट जाने पर भी घर का स्वामी अपने आप को वैसा ही अमर समझता है कि जैसे पहिले समझता था। घर के टूटने से कोई भी मनुष्य अपने आप को खंडित नहीं समझता, इसका हेतु यही है कि वह अपने आप को घर से पूर्णतया भिन्न समझता है। जो योगी इसप्रकार अपने आप को इस स्थूल शरीर से भिन्न समझेगा, उसको इस देह के मृत्यु के साथ अपने मर जाने की कल्पना भी नहीं होगी। क्योंकि वह अपने आप को देह से भिन्न ही मानता है।

❀ अपने आप को देह से भिन्न अनुभव करने की सुगम रीति ❀

प्रतिदिन निद्रा आने के समय की अवस्था विचार करना। उस सूक्ष्म समय में जो अनुभव होता है उसकी कल्पना होने से **"मैं इस स्थूल शरीर से भिन्न हूं"** इसका अनुभव हो सकता है। अभ्यासी इसप्रकार अपने भिन्नत्व का अनुभव ले सकते हैं। योग से जो प्रत्यक्षता है वह कष्ट साध्य है, परन्तु यह उपाय अत्यंत सुगम है और हरएक कर सकता है। इस प्रकार अपने आप को स्थूलशरीर से अलग अनुभव करने पर, स्थूल शरीर टूटने की अवस्था में भी वह अपने आप को वैसाही परिपूर्ण अनुभव करेगा। और दूसरा स्थूल शरीर मिलने पर भी उसको साधन रूप मानकर स्वयं अपने आप को अलग मानेगा। यही अमरत्व है। और धर्म के विविध साधनों से यही अनुभव प्राप्त करना है।

❀ मृत्युपाश और यमदूत ❀

अग्निर्मागोप्ता परिपातु विश्वतः उद्यन्त्सूर्यो-नुदतां मृत्युपाशान्। व्युच्छंतीरुषसः पर्वता ध्रुवा सहस्रं प्राणामय्या यतंताम् ॥ अथ॰ १७।१।३०

"अग्नि सब प्रकार से मेरा रक्षण करे, उदय होनेवाला सूर्य मृत्यु के सब पाशों को दूर करे, उषःकाल और स्थिर पर्वत सहस्रों प्रकार से मेरे अंदर प्राणों का संवर्धन करे।"

इस मंत्र में वैयक्तिकमृत्यु पाशों का वर्णन है। अर्थात् (१) **हवन, (२) सूर्यप्रकाश का सेवन, (३) उषः-**

काल में हवाखोरी और (४) पहाड़ों की सैर, इन चार बातों को करके अभ्यासी मृत्यु के पाश तोड़ सकते हैं ।

कृणोमिते प्राणापानौ जरा मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति । वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽपसे-धामि सर्वान् ॥ ११ ॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परोग्राहिं क्रव्यादःपिशाचान् । रक्षोयत्सर्वं दूर्भूतं तत्तम इवापहन्मि॥ १२॥ अथः ८।२

"तेरे लिये मैं प्राण और अपान, (जरा मृत्यु) वृद्धावस्था के पश्चात् मृत्यु, दीर्घ आयुष्य (स्वस्ति) आरोग्य देता हूं । वैव-स्वत यम से भेजे हुए यमदूतों को मैं दूर करता हूं । (आरातिं) ईर्ष्या, द्वेष, द्रोह, (निर्ऋतिं) रीति और विधि के विरुद्ध आच-रण, (ग्राहिं) बड़ी देर तक चलने वाली बीमारी, (क्रव्यादः) मांस के क्षीण करनेवाले रोग, (पिशाचान्) रक्तदोष करने-वाले रोग बीज, (दूर्भूतं) बुरी रीति से रहने का अभ्यास, आदि जो कुछ है उसको मैं दूर करता हूं जैसे प्रकाश अंधेरे को दूर करता है । इस मंत्र में बतलाए हुये येही यमदूत हैं । इनमें कई अपने ही बुरे व्यवहार से उत्पन्न हुये हैं, अन्यदोष अन्यप्रकार से उत्पन्न होते हैं । इनमें "रक्षः, पिशाचः" वगैरः जो रोग हैं उनको अग्नि, सूर्य, आदि नाश करते हैं । इसप्रकार यह मृत्यु पाशों का स्वरूप है और ये यमदूत हैं । इनको दूर करने के लिये धार्मिक आचरण और योगसाधन ये उपाय हैं ।

❀ मृत्यु की सत्ता ❀

मृत्यु क्या है और वह रहता कहां है ? उपरोक्त मंत्र में **"वैवस्वतयम"** शब्द आया है । विवस्वान् सूर्य होता है, उससे उत्पन्न हुआ यम है । यह **"यम"** शब्द कालवाचक है ।

सूर्य और काल ये आयु को प्रति समय क्षीण करते हैं, परन्तु सूर्य प्रकाश के सेवन से आयुष्य की वृद्धि होती है। इसप्रकार यह अन्योन्याश्रय है। काल अथवा समय ही यम है। तथा—

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकं। तत्तआवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥ ऋ० १०।५८।१

"जो तेरा वैवस्वत यम मन दूर दूर भटकता है, उसको वापस लाकर तेरा दीर्घ आयु बनाता हूं।"

इस मंत्र में मन ही वैवस्वत यम है, ऐसा स्पष्ट कहा है, अपने शरीर में जो मन है वही वैवस्वत यम है। **"यह मन मनुष्य को मारक और तारक भी होता है। मनही बन्ध और मोक्ष का कारण है।"** यह मन हमारे शरीर में यम है, बाह्य जगत् में काल अथवा समय यम हैं। अपने मन के विचारों का निरीक्षण करने से हमही अपने लिये कैसे मृत्यु के पाश और जाल फैलाते हैं, इसका विचार स्पष्ट हो सकता है। काल का विचार छोड़ दें, परन्तु कम से कम हमारे मन के कारण तो हमारा मृत्यु पास नहीं आना चाहिये। इसलिये अभ्यासियो! अपने मन में पूर्णता के आरोग्य मय सुविचार धारण कीजिये और अपने मृत्यु को दूर कीजिये।

यआत्मदाबलदायस्यविश्वउपासतेप्रशिषंयस्य-देवाः। यस्यच्छायाऽमृतंयस्यमृत्युःकस्मैदेवायहवि-षाविधेम॥ यजु० २५। १३, ऋ० १०। १२१। २

"जो आत्मिक सामर्थ्य और शारीरिक बल देनेवाला है, जिसकी सब देव उपासना करते हैं, जिसकी शीतल छाया ही अमृत है और जिससे दूर होना मृत्यु है, उस सुख पूर्ण देवकी अर्पण द्वारा पूजा करते हैं।" अर्थात् जो अभ्यासी मृत्यु को

दूर करना चाहते हैं, वे ईश्वर भक्ति अवश्य किया करें, क्योंकि उससे बल बढ़ जाता है। इस ईश्वर भक्ति से मृत्यु का भय दूर हो जाता है।

"तमेव विदित्वाऽति मृत्यु मेति नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय" ॥ य० ३१ । १८

'उस परमात्मा को जानकर ही मृत्यु को जीत सकते हैं, दूसरा और कोई मार्ग नहीं है।'

❀ मृत्यु को हटाने की विधि ❀

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥ इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ अथ० ११ । ७ । १९

"ब्रह्मचर्य तपसे देव मृत्यु को हटाते हैं। इन्द्रनिश्चय से ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवों का तेज बढ़ाता है।" ब्रह्मचर्य शब्द के अनेक अर्थ हैं यथा—

(१) ब्रह्म अर्थात् महान् होनेके लिये योग्य आचरण करना। (२) ईश्वर के साथ साथ रहना, आस्तिक्य धारण करना। (३) ज्ञान के अनुकूल व्यवहार करना। (४) सत्य-निष्ठ होना। (५) आत्मा के साथ रहना। (६) वीर्य रक्षण औरसुनियमों के अनुकूल आचरण करना।

इत्यादि नियमों के द्वारा देव अर्थात् ज्ञानी विद्वान् और इन्द्रियां मृत्यु को जीतती हैं। और इन्द्र अर्थात् आत्मा इन्द्रियों के अन्दर तेज की स्थापना करता है। मृत्यु को हटाने का यह उपाय है। एक ब्रह्मचर्यशब्द के अंदर सब ही शुभ नियमों का अन्तर्भाव हो जाता है।

वैदिक-धर्म का ओजस्वी उपदेश

(१) "मामृत्योः उदगातवशं" अथ० १६।२७।८ = मृत्यु के अधीन मत होओ। (मा-उत-अगात् = मत जाओ) Submit not to be power of Death. यह आज्ञा अत्यन्त स्पष्ट है कि यदि मनुष्य योग्य रीति से प्रयत्न करेगा, तो मृत्यु को हटा सकेगा।

"मापुरा जरसो मृथाः" ॥ अथः ५।३०।१७ = वृद्धावस्था के पूर्व (मा मृथाः) मत मरो।

"अदीनाःस्यामशरदःशतम्" ॥ यजु० ३६।२४ = दीनतारहित हुए सौ वर्ष रहें।

अन्तिम ध्येय

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसंनित्यमगन्ध वच्चयत् ॥ अनाद्यनन्तंमहतः परंध्रुवंनिचाय्यतंमृत्यु मुखात्प्रमुच्यते ॥" कठ० तृ० व० श्लो० १५

जो ब्रह्म शब्द रहित, स्पर्श रहित, तथा रस रहित और गंध रहित, विकार रहित नित्य, आदि रहित, अनन्त, महत्तत्त्व से भी परे अचल है, उस परमात्मा को जानकर मौत के मुख से छूट सकता है अर्थात् मुक्त होता है। इसलिये—

"ओ३म् क्रतोस्मर, क्लिबेस्मर, कृत ँस्मर।" यजु० अ० ४०।१५

ओ३म् नाम वाच्य ईश्वर का स्मरणकर, अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का स्मरणकर, अपने किये का स्मरण कर।

* ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः *

—मंत्रव्य ।

(योगसाधनमाला के द्वितीय वर्ष

ग्राहक तथा सहायक महोदय !

विदित हो कि सच्चिदानन्द जगदीश्व
से योगमण्डल काशी द्वारा प्रकाशित यो
द्वितीय वर्ष सानन्द समाप्त हो गया ! जिन
माला के ग्राहक तथा सहायक बन योगयज्ञ
सहायता प्रदान किये उक्त मंडल की ओर से
है। आशा है कि इसी प्रकार तृतीय वर्ष में
परिचय देकर लाभान्वित करेंगे।

तृतीय वर्ष के प्राप्य पुस्तकों की

(१) योगविज्ञान । (२) संध्
(३) अक्षरविज्ञान । (४) वेद
(५) उपनिषद्विज्ञान । (६) श

द्रष्टव्य :—स्थायी ग्राहक तथ
समीप तृतीय वर्ष के अग्रिम
आवश्यक ३॥), ५) रू० का गत
वी० पी० द्वारा प्रथम पुष्प 'योग
जावेगा।